॥ श्रीहरिः ॥

206

श्रीविष्णुसहस्त्रनामस्तोत्रम्

(हिन्दी-अनुवाद-सहित)

गीताप्रेस, गोरखपुर

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

अथ श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम्

यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्।
विमुच्यते नमस्तस्मै विष्णवे प्रभविष्णवे॥

जिनके स्मरण करनेमात्रसे मनुष्य जन्म-मृत्युरूप संसारबन्धनसे मुक्त हो जाता है, सबकी उत्पत्तिके कारणभूत उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है।

नमः समस्तभूतानामादिभूताय भूभृते।
अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके आदिभूत, पृथ्वीको धारण करनेवाले, अनेक रूपधारी और सर्वसमर्थ भगवान् विष्णुको प्रणाम है।

वैशम्पायन उवाच

श्रुत्वा धर्मानशेषेण पावनानि च सर्वशः।
युधिष्ठिरः शान्तनवं पुनरेवाभ्यभाषत।१।

वैशम्पायनजी कहते हैं—राजन्! धर्मपुत्र राजा

युधिष्ठिरने सम्पूर्ण विधिरूप धर्म तथा पापोंका क्षय करनेवाले धर्मरहस्योंको सब प्रकार सुनकर शान्तनुपुत्र भीष्मसे फिर पूछा॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

किमेकं दैवतं लोके किं वाप्येकं परायणम्।
स्तुवन्तः कं कमर्चन्तः प्राप्नुयुर्मानवाः शुभम्। २।

युधिष्ठिर बोले—समस्त जगत्‌में एक ही देव कौन है? तथा इस लोकमें एक ही परम आश्रयस्थान कौन है? जिसका साक्षात्कार कर लेनेपर जीवकी अविद्यारूप हृदय-ग्रन्थि टूट जाती है, सब संशय नष्ट हो जाते हैं तथा सम्पूर्ण कर्म क्षीण हो जाते हैं। किस देवकी स्तुति—गुणकीर्तन करनेसे तथा किस देवका नाना प्रकारसे बाह्य और आन्तरिक पूजन करनेसे मनुष्य कल्याणकी प्राप्ति कर सकते हैं?॥ २ ॥

को धर्मः सर्वधर्माणां भवतः परमो मतः।
किं जपन्मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्। ३।

आप समस्त धर्मोंमें पूर्वोक्त लक्षणोंसे युक्त किस धर्मको परम श्रेष्ठ मानते हैं? तथा किसका जप करनेसे जननधर्मा जीव जन्म-मरणरूप संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है?॥ ३ ॥

भीष्म उवाच

जगत्प्रभुं देवदेवमनन्तं पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्त्रेण पुरुषः सततोत्थितः। ४।

भीष्मजीने कहा—स्थावर-जंगमरूप संसारके स्वामी, ब्रह्मादि देवोंके देव, देश-काल और वस्तुसे अपरिच्छिन्न, क्षर-अक्षरसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तमका सहस्त्रनामोंके द्वारा निरन्तर तत्पर रहकर गुण-संकीर्तन करनेसे पुरुष सब दुःखोंसे पार हो जाता है॥ ४॥

तमेव चार्चयन्नित्यं भक्त्या पुरुषमव्ययम्।
ध्यायन्स्तुवन्नमस्यंश्च यजमानस्तमेव च। ५।

तथा उसी विनाशरहित पुरुषका सब समय भक्तिसे युक्त होकर पूजन करनेसे, उसीका ध्यान करनेसे तथा पूर्वोक्त प्रकारसे सहस्त्रनामोंके द्वारा स्तवन एवं नमस्कार करनेसे पूजा करनेवाला सब दुःखोंसे छूट जाता है॥ ५॥

अनादिनिधनं विष्णुं सर्वलोकमहेश्वरम्।
लोकाध्यक्षं स्तुवन्नित्यं सर्वदुःखातिगो भवेत्। ६।

उस जन्म-मृत्यु आदि छः भावविकारोंसे रहित, सर्वव्यापक, सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर, लोकाध्यक्ष देवकी निरन्तर स्तुति करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे

पार हो जाता है ॥ ६ ॥

ब्रह्मण्यं सर्वधर्मज्ञं लोकानां कीर्तिवर्धनम्।
लोकनाथं महद्भूतं सर्वभूतभवोद्भवम्। ७।

जगत्की रचना करनेवाले ब्रह्माके तथा ब्राह्मण, तप और श्रुतिके हितकारी, सब धर्मोंको जाननेवाले, प्राणियोंकी कीर्तिको (उनमें अपनी शक्तिसे प्रविष्ट होकर) बढ़ानेवाले, सम्पूर्ण लोकोंके स्वामी, समस्त भूतोंके उत्पत्तिस्थान एवं संसारके कारणरूप परमेश्वरका स्तवन करनेसे मनुष्य सब दुःखोंसे छूट जाता है ॥ ७ ॥

एष मे सर्वधर्माणां धर्मोऽधिकतमो मतः।
यद्भक्त्या पुण्डरीकाक्षं स्तवैरर्चेन्नरः सदा। ८।

विधिरूप सम्पूर्ण धर्मोंमें मैं इसी धर्मको सबसे बड़ा मानता हूँ कि मनुष्य अपने हृदयकमलमें विराजमान कमलनयन भगवान् वासुदेवका भक्तिपूर्वक तत्परतासहित गुण-संकीर्तनरूप स्तुतियोंसे सदा अर्चन करे ॥ ८ ॥

परमं यो महत्तेजः परमं यो महत्तपः।
परमं यो महद्ब्रह्म परमं यः परायणम्। ९।

जो देव परम तेज, परम तप, परम ब्रह्म और परम

परायण है, वही समस्त प्राणियोंकी परम गति है॥ ९॥

पवित्राणां पवित्रं यो मङ्गलानां च मङ्गलम्।
दैवतं देवतानां च भूतानां योऽव्ययः पिता।१०।
यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे।
यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये।११।
तस्य लोकप्रधानस्य जगन्नाथस्य भूपते।
विष्णोर्नामसहस्त्रं मे शृणु पापभयापहम्।१२।

पृथ्वीपते! जो पवित्र करनेवाले तीर्थादिकोंमें परम पवित्र है, मंगलोंका मंगल है, देवोंका देव है तथा जो भूतप्राणियोंका अविनाशी पिता है, कल्पके आदिमें जिससे सम्पूर्ण भूत उत्पन्न होते हैं और फिर युगका क्षय होनेपर महाप्रलयमें जिसमें वे विलीन हो जाते हैं, उस लोकप्रधान, संसारके स्वामी भगवान् विष्णुके पाप और संसारभयको दूर करनेवाले हजार नामोंको मुझसे सुन॥ १०—१२॥

यानि नामानि गौणानि विख्यातानि महात्मनः।
ऋषिभिः परिगीतानि तानि वक्ष्यामि भूतये।१३।

जो नाम गुणके कारण प्रवृत्त हुए हैं, उनमेंसे जो-जो प्रसिद्ध हैं और मन्त्रद्रष्टा मुनियोंद्वारा जो जहाँ-तहाँ

सर्वत्र भगवत्कथाओंमें गाये गये हैं, उस अचिन्त्यप्रभाव महात्माके उन समस्त नामोंको पुरुषार्थसिद्धिके लिये वर्णन करता हूँ॥ १३॥

ॐ विश्वं विष्णुर्वषट्कारो भूतभव्यभवत्प्रभुः।
भूतकृद्भूतभृद्भावो भूतात्मा भूतभावनः।१४।

ॐ सच्चिदानन्दस्वरूप, **विश्वम्**—समस्त जगत्‌के कारणरूप, **विष्णुः**—सर्वव्यापी, **वषट्कारः**— जिनके उद्देश्यसे यज्ञमें वषट्क्रिया की जाती है, ऐसे यज्ञस्वरूप, **भूतभव्यभवत्प्रभुः**—भूत, भविष्यत् और वर्तमानके स्वामी, **भूतकृत्**—रजोगुणका आश्रय लेकर ब्रह्मारूपसे सम्पूर्ण भूतोंकी रचना करनेवाले, **भूतभृत्**—सत्त्वगुणका आश्रय लेकर सम्पूर्ण भूतोंका पालन-पोषण करनेवाले, **भावः**—नित्यस्वरूप होते हुए भी स्वतः उत्पन्न होनेवाले, **भूतात्मा**—सम्पूर्ण भूतोंके आत्मा अर्थात् अन्तर्यामी, **भूतभावनः**—भूतोंकी उत्पत्ति और वृद्धि करनेवाले (१—९)॥ १४॥

पूतात्मा परमात्मा च मुक्तानां परमा गतिः।
अव्ययः पुरुषः साक्षी क्षेत्रज्ञोऽक्षर एव च।१५।

पूतात्मा—पवित्रात्मा, **परमात्मा**—परम श्रेष्ठ

नित्यशुद्ध-बुद्ध मुक्तस्वभाव, **मुक्तानां परमा गतिः**—मुक्त पुरुषोंकी सर्वश्रेष्ठ गतिस्वरूप, **अव्ययः**—कभी विनाशको प्राप्त न होनेवाले, **पुरुषः**—पुर अर्थात् शरीरमें शयन करनेवाले, **साक्षी**—बिना किसी व्यवधानके सब कुछ देखनेवाले, **क्षेत्रज्ञः**—क्षेत्र अर्थात् समस्त प्रकृतिरूप शरीरको पूर्णतया जाननेवाले, **अक्षरः**—कभी क्षीण न होनेवाले (१०—१७) ॥ १५ ॥

योगो योगविदां नेता प्रधानपुरुषेश्वरः ।
नारसिंहवपुः श्रीमान्केशवः पुरुषोत्तमः ।१६।

योगः—मनसहित सम्पूर्ण ज्ञानेन्द्रियोंके निरोधरूप योगसे प्राप्त होनेवाले, **योगविदां नेता**—योगको जाननेवाले भक्तोंके योगक्षेमादिका निर्वाह करनेमें अग्रसर रहनेवाले, **प्रधानपुरुषेश्वरः**—प्रकृति और पुरुषके स्वामी, **नारसिंहवपुः**—मनुष्य और सिंह—दोनोंके-जैसा शरीर धारण करनेवाले नरसिंहरूप, **श्रीमान्**—वक्षःस्थलमें सदा श्रीको धारण करनेवाले, **केशवः**—(क) ब्रह्मा, (अ) विष्णु और (ईश) महादेव—इस प्रकार त्रिमूर्तिस्वरूप, **पुरुषोत्तमः**—क्षर और अक्षर—इन दोनोंसे सर्वथा उत्तम (१८—२४) ॥ १६ ॥

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः।
सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः।१७।

सर्वः—असत् और सत्—सबकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके स्थान, **शर्वः**—सारी प्रजाका प्रलयकालमें संहार करनेवाले, **शिवः**—तीनों गुणोंसे परे कल्याणस्वरूप, **स्थाणुः**—स्थिर, **भूतादिः**—भूतोंके आदिकारण, **निधिरव्ययः**—प्रलयकालमें सब प्राणियोंके लीन होनेके अविनाशी स्थानरूप, **सम्भवः**—अपनी इच्छासे भली प्रकार प्रकट होनेवाले, **भावनः**—समस्त भोक्ताओंके फलोंको उत्पन्न करनेवाले, **भर्ता**—सबका भरण करनेवाले, **प्रभवः**—उत्कृष्ट (दिव्य) जन्मवाले, **प्रभुः**—सबके स्वामी, **ईश्वरः**—उपाधिरहित ऐश्वर्यवाले (२५—३६)॥१७॥

स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः।१८।

स्वयम्भूः—स्वयं उत्पन्न होनेवाले, **शम्भुः**—भक्तोंके लिये सुख उत्पन्न करनेवाले, **आदित्यः**—द्वादश आदित्योंमें विष्णु नामक आदित्य, **पुष्कराक्षः**—कमलके समान नेत्रवाले, **महास्वनः**—वेदरूप अत्यन्त महान् घोषवाले, **अनादिनिधनः**—जन्म-मृत्युसे रहित, **धाता**—विश्वको धारण करनेवाले, **विधाता**—कर्म और उसके फलोंकी

सर्वः शर्वः शिवः स्थाणुर्भूतादिर्निधिरव्ययः।
सम्भवो भावनो भर्ता प्रभवः प्रभुरीश्वरः।१७।

सर्वः—असत् और सत्—सबकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके स्थान, **शर्वः**—सारी प्रजाका प्रलयकालमें संहार करनेवाले, **शिवः**—तीनों गुणोंसे परे कल्याणस्वरूप, **स्थाणुः**—स्थिर, **भूतादिः**—भूतोंके आदिकारण, **निधिरव्ययः**—प्रलयकालमें सब प्राणियोंके लीन होनेके अविनाशी स्थानरूप, **सम्भवः**—अपनी इच्छासे भली प्रकार प्रकट होनेवाले, **भावनः**—समस्त भोक्ताओंके फलोंको उत्पन्न करनेवाले, **भर्ता**—सबका भरण करनेवाले, **प्रभवः**—उत्कृष्ट (दिव्य) जन्मवाले, **प्रभुः**—सबके स्वामी, **ईश्वरः**—उपाधिरहित ऐश्वर्यवाले (२५—३६) ॥ १७ ॥

स्वयम्भूः शम्भुरादित्यः पुष्कराक्षो महास्वनः।
अनादिनिधनो धाता विधाता धातुरुत्तमः।१८।

स्वयम्भूः—स्वयं उत्पन्न होनेवाले, **शम्भुः**—भक्तोंके लिये सुख उत्पन्न करनेवाले, **आदित्यः**—द्वादश आदित्योंमें विष्णु नामक आदित्य, **पुष्कराक्षः**—कमलके समान नेत्रवाले, **महास्वनः**—वेदरूप अत्यन्त महान् घोषवाले, **अनादिनिधनः**—जन्म-मृत्युसे रहित, **धाता**—विश्वको धारण करनेवाले, **विधाता**—कर्म और उसके फलोंकी

रचना करनेवाले, **धातुरुत्तमः**—कार्य-कारणरूप सम्पूर्ण प्रपंचको धारण करनेवाले एवं सर्वश्रेष्ठ (३७—४५)॥ १८॥

अप्रमेयो हृषीकेशः पद्मनाभोऽमरप्रभुः।
विश्वकर्मा मनुस्त्वष्टा स्थविष्ठः स्थविरो ध्रुवः। १९।

अप्रमेयः—प्रमाणादिसे जाननेमें न आ सकनेवाले, **हृषीकेशः**—इन्द्रियोंके स्वामी, **पद्मनाभः**—जगत्‌के कारणरूप कमलको अपनी नाभिमें स्थान देनेवाले, **अमरप्रभुः**—देवताओंके स्वामी, **विश्वकर्मा**—सारे जगत्‌की रचना करनेवाले, **मनुः**—प्रजापति मनुरूप, **त्वष्टा**—संहारके समय सम्पूर्ण प्राणियोंको क्षीण करनेवाले, **स्थविष्ठः**—अत्यन्त स्थूल, **स्थविरो ध्रुवः**—अति प्राचीन एवं अत्यन्त स्थिर (४६—५४)॥ १९॥

अग्राह्यः शाश्वतः कृष्णो लोहिताक्षः प्रतर्दनः।
प्रभूतस्त्रिककुब्धाम पवित्रं मङ्गलं परम्। २०।

अग्राह्यः—मनसे भी ग्रहण न किये जा सकनेवाले, **शाश्वतः**—सब कालमें स्थित रहनेवाले, **कृष्णः**—सबके चित्तको बलात् अपनी ओर आकर्षित करनेवाले परमानन्दस्वरूप, **लोहिताक्षः**—लाल नेत्रोंवाले, **प्रतर्दनः**—प्रलयकालमें प्राणियोंका संहार करनेवाले, **प्रभूतः**—ज्ञान, ऐश्वर्य आदि गुणोंसे सम्पन्न, **त्रिककुब्धाम**—ऊपर-

नीचे और मध्यभेदवाली तीनों दिशाओंके आश्रयरूप, **पवित्रम्**—सबको पवित्र करनेवाले, **मङ्गलं परम्**—परम मंगलस्वरूप (५५—६३) ॥ २० ॥

ईशानः प्राणदः प्राणो ज्येष्ठः श्रेष्ठः प्रजापतिः।
हिरण्यगर्भो भूगर्भो माधवो मधुसूदनः।२१।

ईशानः—सर्वभूतोंके नियन्ता, **प्राणदः**—सबके प्राण-संशोधन करनेवाले, **प्राणः**—सबको जीवित रखनेवाले प्राणस्वरूप, **ज्येष्ठः**—सबके कारण होनेसे सबसे बड़े, **श्रेष्ठः**—सबमें उत्कृष्ट होनेसे परम श्रेष्ठ, **प्रजापतिः**—ईश्वररूपसे सारी प्रजाओंके मालिक, **हिरण्यगर्भः**—ब्रह्माण्डरूप हिरण्यमय अण्डके भीतर ब्रह्मारूपसे व्याप्त होनेवाले, **भूगर्भः**—पृथ्वीके गर्भमें रहनेवाले, **माधवः**—लक्ष्मीके पति, **मधुसूदनः**—मधु नामक दैत्यको मारनेवाले (६४—७३) ॥ २१ ॥

ईश्वरो विक्रमी धन्वी मेधावी विक्रमः क्रमः।
अनुत्तमो दुराधर्षः कृतज्ञः कृतिरात्मवान्।२२।

ईश्वरः—सर्वशक्तिमान् ईश्वर, **विक्रमी**—शूरवीरतासे युक्त, **धन्वी**—शार्ङ्गधनुष रखनेवाले, **मेधावी**—अतिशय बुद्धिमान्, **विक्रमः**—गरुड़ पक्षीद्वारा गमन करनेवाले,

क्रमः—क्रम-विस्तारके कारण, **अनुत्तमः**—सर्वोत्कृष्ट, **दुराधर्षः**—किसीसे भी तिरस्कृत न हो सकनेवाले, **कृतज्ञः**—अपने निमित्तसे थोड़ा-सा भी त्याग किये जानेपर उसे बहुत माननेवाले यानी पत्र-पुष्पादि थोड़ी-सी वस्तु समर्पण करनेवालोंको भी मोक्ष दे देनेवाले, **कृतिः**—पुरुष-प्रयत्नके आधाररूप, **आत्मवान्**— अपनी ही महिमामें स्थित (७४—८४) ॥ २२ ॥

सुरेशः शरणं शर्म विश्वरेताः प्रजाभवः ।
अहः संवत्सरो व्यालः प्रत्ययः सर्वदर्शनः ।२३।

सुरेशः—देवताओंके स्वामी, **शरणम्**—दीन-दुःखियोंके परम आश्रय, **शर्म**—परमानन्दस्वरूप, **विश्वरेताः**—विश्वके कारण, **प्रजाभवः**—सारी प्रजाको उत्पन्न करनेवाले, **अहः**—प्रकाशरूप, **संवत्सरः**—कालरूपसे स्थित, **व्यालः**—सर्पके समान ग्रहण करनेमें न आ सकनेवाले, **प्रत्ययः**—उत्तम बुद्धिसे जाननेमें आनेवाले, **सर्वदर्शनः**—सबके द्रष्टा (८५—९४) ॥ २३ ॥

अजः सर्वेश्वरः सिद्धः सिद्धिः सर्वादिरच्युतः ।
वृषाकपिरमेयात्मा सर्वयोगविनिःसृतः ।२४।

अजः—जन्मरहित, **सर्वेश्वरः**—समस्त ईश्वरोंके

भी ईश्वर, **सिद्धः**—नित्यसिद्ध, **सिद्धिः**—सबके फलस्वरूप, **सर्वादिः**—सर्वभूतोंके आदि कारण, **अच्युतः**—अपनी स्वरूप-स्थितिसे कभी त्रिकालमें भी च्युत न होनेवाले, **वृषाकपिः**—धर्म और वराहरूप, **अमेयात्मा**—अप्रमेयस्वरूप, **सर्वयोगविनिःसृतः**—नाना प्रकारके शास्त्रोक्त साधनोंसे जाननेमें आनेवाले (९५—१०३)॥ २४॥

वसुर्वसुमनाः सत्यः समात्मासम्मितः समः।
अमोघः पुण्डरीकाक्षो वृषकर्मा वृषाकृतिः।२५।

वसुः—सब भूतोंके वासस्थान, **वसुमनाः**— उदार मनवाले, **सत्यः**—सत्यस्वरूप, **समात्मा**—सम्पूर्ण प्राणियोंमें एक आत्मारूपसे विराजनेवाले, **असम्मितः**—समस्त पदार्थोंसे मापे न जा सकनेवाले, **समः**—सब समय समस्त विकारोंसे रहित, **अमोघः**—भक्तोंके द्वारा पूजन, स्तवन अथवा स्मरण किये जानेपर उन्हें वृथा न करके पूर्णरूपसे उनका फल प्रदान करनेवाले, **पुण्डरीकाक्षः**—कमलके समान नेत्रोंवाले, **वृषकर्मा**—धर्ममय कर्म करनेवाले, **वृषाकृतिः**—धर्मकी स्थापना करनेके लिये विग्रह धारण करनेवाले (१०४—११३)॥ २५॥

रुद्रो बहुशिरा बभ्रुर्विश्वयोनिः शुचिश्रवाः।
अमृतः शाश्वतस्थाणुर्वरारोहो महातपाः।२६।

रुद्रः—दुःख या दुःखके कारणको दूर भगा देनेवाले, **बहुशिराः**—बहुत-से सिरोंवाले, **बभ्रुः**—लोकोंका भरण करनेवाले, **विश्वयोनिः**—विश्वको उत्पन्न करनेवाले, **शुचिश्रवाः**—पवित्र कीर्तिवाले, **अमृतः**—कभी न मरनेवाले, **शाश्वतस्थाणुः**—नित्य सदा एकरस रहनेवाले एवं स्थिर, **वरारोहः**—आरूढ़ होनेके लिये परम उत्तम अपुनरावृत्तिस्थानरूप, **महातपाः**—प्रताप (प्रभाव)-रूप महान् तपवाले (११४—१२२)॥२६॥

सर्वगः सर्वविद्भानुर्विष्वक्सेनो जनार्दनः।
वेदो वेदविदव्यङ्गो वेदाङ्गो वेदवित्कविः।२७।

सर्वगः—कारणरूपसे सर्वत्र व्याप्त रहनेवाले, **सर्वविद्भानुः**—सब कुछ जाननेवाले तथा प्रकाशरूप, **विष्वक्सेनः**—युद्धके लिये की हुई तैयारीमात्रसे ही दैत्यसेनाको तितर-बितर कर डालनेवाले, **जनार्दनः**—भक्तोंके द्वारा अभ्युदय-निःश्रेयसरूप परम पुरुषार्थकी याचना किये जानेवाले, **वेदः**—वेदरूप, **वेदवित्**—वेद तथा वेदके अर्थको यथावत् जाननेवाले, **अव्यङ्गः**—ज्ञानादिसे परिपूर्ण अर्थात् किसी प्रकार अधूरे न रहनेवाले—

सर्वांगपूर्ण, **वेदाङ्गः**—वेदरूप अंगोंवाले, **वेदवित्**—वेदोंको विचारनेवाले, **कविः**—सर्वज्ञ (१२३—१३२) ॥ २७ ॥

लोकाध्यक्षः सुराध्यक्षो धर्माध्यक्षः कृताकृतः ।
चतुरात्मा चतुर्व्यूहश्चतुर्दंष्ट्रश्चतुर्भुजः ।२८।

लोकाध्यक्षः—समस्त लोकोंके अधिपति, **सुराध्यक्षः**—देवताओंके अध्यक्ष, **धर्माध्यक्षः**—अनुरूप फल देनेके लिये धर्म और अधर्मका निर्णय करनेवाले, **कृताकृतः**—कार्यरूपसे कृत और कारणरूपसे अकृत, **चतुरात्मा**—सृष्टिकी उत्पत्ति आदिके लिये चार पृथक् मूर्तियोंवाले, **चतुर्व्यूहः**—उत्पत्ति, स्थिति, नाश और रक्षारूप चार व्यूहवाले, **चतुर्दंष्ट्रः**—चार दाढ़ोंवाले नरसिंहरूप, **चतुर्भुजः**—चार भुजाओंवाले वैकुण्ठवासी भगवान् विष्णु (१३३—१४०) ॥ २८ ॥

भ्राजिष्णुर्भोजनं भोक्ता सहिष्णुर्जगदादिजः ।
अनघो विजयो जेता विश्वयोनिः पुनर्वसुः ।२९।

भ्राजिष्णुः— एकरस प्रकाशस्वरूप, **भोजनम्**—ज्ञानियोंद्वारा भोगनेयोग्य अमृतस्वरूप, **भोक्ता**—पुरुषरूपसे भोक्ता, **सहिष्णुः**—सहनशील, **जगदादिजः**—जगत्के आदिमें हिरण्यगर्भरूपसे स्वयं उत्पन्न होनेवाले, **अनघः**—पापरहित, **विजयः**—ज्ञान, वैराग्य और

ऐश्वर्य आदि गुणोंमें सबसे बढ़कर, **जेता**—स्वभावसे ही समस्त भूतोंको जीतनेवाले, **विश्वयोनिः**—प्रकृतिस्वरूप, **पुनर्वसुः**—पुनः-पुनः शरीरोंमें आत्मरूपसे बसनेवाले (१४१—१५०) ॥ २९ ॥

उपेन्द्रो वामनः प्रांशुरमोघः शुचिरूर्जितः।
अतीन्द्रः संग्रहः सर्गो धृतात्मा नियमो यमः। ३०।

उपेन्द्रः—इन्द्रको अनुजरूपसे प्राप्त होनेवाले, **वामनः**— वामनरूपसे अवतार लेनेवाले, **प्रांशुः**—तीनों लोकोंको लाँघनेके लिये त्रिविक्रमरूपसे ऊँचे होनेवाले, **अमोघः**—अव्यर्थ चेष्टावाले, **शुचिः**—स्मरण, स्तुति और पूजन करनेवालोंको पवित्र कर देनेवाले, **ऊर्जितः**—अत्यन्त बलशाली, **अतीन्द्रः**—स्वयंसिद्ध ज्ञान-ऐश्वर्यादिके कारण इन्द्रसे भी बढ़े-चढ़े हुए, **संग्रहः**—प्रलयके समय सबको समेट लेनेवाले, **सर्गः**—सृष्टिके कारणरूप, **धृतात्मा**—जन्मादिसे रहित रहकर स्वेच्छासे स्वरूप धारण करनेवाले, **नियमः**—प्रजाको अपने-अपने अधिकारोंमें नियमित करनेवाले, **यमः**—अन्तःकरणमें स्थित होकर नियमन करनेवाले (१५१—१६२) ॥ ३० ॥

वेद्यो वैद्यः सदायोगी वीरहा माधवो मधुः।
अतीन्द्रियो महामायो महोत्साहो महाबलः। ३१।

वेद्यः—कल्याणकी इच्छावालोंके द्वारा जाननेयोग्य, **वैद्यः**—सब विद्याओंके जाननेवाले, **सदायोगी**—सदा योगमें स्थित रहनेवाले, **वीरहा**—धर्मकी रक्षाके लिये असुर योद्धाओंको मार डालनेवाले, **माधवः**—विद्याके स्वामी, **मधुः**—अमृतकी तरह सबको प्रसन्न करनेवाले, **अतीन्द्रियः**—इन्द्रियोंसे सर्वथा अतीत, **महामायः**—मायावियोंपर भी माया डालनेवाले, महान् मायावी, **महोत्साहः**—जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके लिये तत्पर रहनेवाले परम उत्साही, **महाबलः**—महान् बलशाली (१६३—१७२)॥ ३१॥

महाबुद्धिर्महावीर्यो महाशक्तिर्महाद्युतिः।
अनिर्देश्यवपुः श्रीमानमेयात्मा महाद्रिधृक्॥ ३२॥

महाबुद्धिः—महान् बुद्धिमान्, **महावीर्यः**—महान् पराक्रमी, **महाशक्तिः**—महान् सामर्थ्यवान्, **महाद्युतिः**—महान् कान्तिमान्, **अनिर्देश्यवपुः**—अनिर्देश्य विग्रहवाले, **श्रीमान्**— ऐश्वर्यवान्, **अमेयात्मा**—जिसका अनुमान न किया जा सके ऐसे आत्मावाले, **महाद्रिधृक्**—अमृतमन्थन और गोरक्षणके समय मन्दराचल और गोवर्धन नामक महान् पर्वतोंको धारण करनेवाले (१७३—१८०)॥ ३२॥

महेष्वासो महीभर्ता श्रीनिवासः सतां गतिः।
अनिरुद्धः सुरानन्दो गोविन्दो गोविदां पतिः। ३३।

महेष्वासः—महान् धनुषवाले, **महीभर्ता**—पृथ्वीको धारण करनेवाले, **श्रीनिवासः**—अपने वक्षःस्थलमें श्रीको निवास देनेवाले, **सतां गतिः**—सत्पुरुषोंके परम आश्रय, **अनिरुद्धः**—सच्ची भक्तिके बिना किसीके भी द्वारा न रुकनेवाले, **सुरानन्दः**—देवताओंको आनन्दित करनेवाले, **गोविन्दः**—वेदवाणीके द्वारा अपनेको प्राप्त करा देनेवाले, **गोविदां पतिः**—वेदवाणीको जाननेवालोंके स्वामी (१८१—१८८)॥ ३३॥

मरीचिर्दमनो हंसः सुपर्णो भुजगोत्तमः।
हिरण्यनाभः सुतपाः पद्मनाभः प्रजापतिः। ३४।

मरीचिः—तेजस्वियोंके भी परम तेजरूप, **दमनः**—प्रमाद करनेवाली प्रजाको यम आदिके रूपसे दमन करनेवाले, **हंसः**—पितामह ब्रह्माको वेदका ज्ञान करानेके लिये हंसरूप धारण करनेवाले, **सुपर्णः**—सुन्दर पंखवाले गरुड़स्वरूप, **भुजगोत्तमः**—सर्पोंमें श्रेष्ठ शेषनागरूप, **हिरण्यनाभः**—हितकारी और रमणीय नाभिवाले, **सुतपाः**—बदरिकाश्रममें नर-नारायणरूपसे सुन्दर तप करनेवाले, **पद्मनाभः**—कमलके समान सुन्दर नाभिवाले, **प्रजापतिः**—सम्पूर्ण

प्रजाओंके पालनकर्ता (१८९—१९७) ॥ ३४ ॥

अमृत्युः सर्वदृक् सिंहः सन्धाता सन्धिमान्स्थिरः ।
अजो दुर्मर्षणः शास्ता विश्रुतात्मा सुरारिहा ॥ ३५ ॥

अमृत्युः—मृत्युसे रहित, **सर्वदृक्**—सब कुछ देखनेवाले, **सिंहः**—दुष्टोंका विनाश करनेवाले, **सन्धाता**—पुरुषोंको उनके कर्मोंके फलोंसे संयुक्त करनेवाले, **सन्धिमान्**—सम्पूर्ण यज्ञ और तपोंको भोगनेवाले, **स्थिरः**—सदा एकरूप, **अजः**—भक्तोंके हृदयोंमें जानेवाले तथा दुर्गुणोंको दूर हटा देनेवाले, **दुर्मर्षणः**—किसीसे भी सहन नहीं किये जा सकनेवाले, **शास्ता**—सबपर शासन करनेवाले, **विश्रुतात्मा**—वेदशास्त्रोंमें विशेषरूपसे प्रसिद्ध स्वरूपवाले, **सुरारिहा**—देवताओंके शत्रुओंको मारनेवाले (१९८—२०८) ॥ ३५ ॥

गुरुर्गुरुतमो धाम सत्यः सत्यपराक्रमः ।
निमिषोऽनिमिषः स्रग्वी वाचस्पतिरुदारधीः ॥ ३६ ॥

गुरुः—सब विद्याओंका उपदेश करनेवाले, **गुरुतमः**—ब्रह्मा आदिको भी ब्रह्मविद्या प्रदान करनेवाले, **धाम**—सम्पूर्ण प्राणियोंकी कामनाओंके आश्रय, **सत्यः**—सत्यस्वरूप, **सत्यपराक्रमः**—अमोघ पराक्रमवाले,

निमिषः—योगनिद्रासे मुँदे हुए नेत्रोंवाले, **अनिमिषः**—मत्स्यरूपसे अवतार लेनेवाले, **स्रग्वी**—वैजयन्ती माला धारण करनेवाले, **वाचस्पतिरुदारधीः**—सारे पदार्थोंको प्रत्यक्ष करनेवाली बुद्धिसे युक्त समस्त विद्याओंके पति (२०९—२१७)॥ ३६॥

अग्रणीर्ग्रामणीः श्रीमान्न्यायो नेता समीरणः।
सहस्रमूर्धा विश्वात्मा सहस्राक्षः सहस्रपात्। ३७।

अग्रणीः—मुमुक्षुओंको उत्तम पदपर ले जानेवाले, **ग्रामणीः**—भूतसमुदायके नेता, **श्रीमान्**—सबसे बढ़ी-चढ़ी कान्तिवाले, **न्यायः**— प्रमाणोंके आश्रयभूत तर्ककी मूर्ति, **नेता**—जगद्रूप यन्त्रको चलानेवाले, **समीरणः**—श्वासरूपसे प्राणियोंसे चेष्टा करानेवाले, **सहस्रमूर्धा**—हजार सिरवाले, **विश्वात्मा**—विश्वके आत्मा, **सहस्राक्षः**—हजार आँखोंवाले, **सहस्रपात्**—हजार पैरोंवाले (२१८—२२७)॥ ३७॥

आवर्तनो निवृत्तात्मा संवृतः सम्प्रमर्दनः।
अहःसंवर्तको वह्निरनिलो धरणीधरः। ३८।

आवर्तनः—संसारचक्रको चलानेके स्वभाववाले, **निवृत्तात्मा**—संसारबन्धनसे मुक्त आत्मस्वरूप, **संवृतः**—अपनी योगमायासे ढके हुए, **सम्प्रमर्दनः**—अपने रुद्र

आदि स्वरूपसे सबका मर्दन करनेवाले, **अहःसंवर्तकः**—सूर्यरूपसे सम्यक्तया दिनके प्रवर्तक, **वह्निः**—हविको वहन करनेवाले अग्निदेव, **अनिलः**—प्राणरूपसे वायुस्वरूप, **धरणीधरः**—वराह और शेषरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले (२२८—२३५) ॥ ३८ ॥

सुप्रसादः प्रसन्नात्मा विश्वधृग्विश्वभुग्विभुः ।
सत्कर्ता सत्कृतः साधुर्जह्नुर्नारायणो नरः ।। ३९ ।।

सुप्रसादः—शिशुपालादि अपराधियोंपर भी कृपा करनेवाले, **प्रसन्नात्मा**—प्रसन्न स्वभाववाले अर्थात् करुणा करनेवाले, **विश्वधृक्**—जगत्को धारण करनेवाले, **विश्वभुक्**—विश्वको भोगनेवाले अर्थात् विश्वका पालन करनेवाले, **विभुः**—विविध प्रकारसे प्रकट होनेवाले, **सत्कर्ता**—भक्तोंका सत्कार करनेवाले, **सत्कृतः**—पूजितोंसे भी पूजित, **साधुः**—भक्तोंके कार्य साधनेवाले, **जह्नुः**—संहारके समय जीवोंका लय करनेवाले, **नारायणः**—जलमें शयन करनेवाले, **नरः**—भक्तोंको परमधाममें ले जानेवाले (२३६—२४६) ॥ ३९ ॥

असंख्येयोऽप्रमेयात्मा विशिष्टः शिष्टकृच्छुचिः ।
सिद्धार्थः सिद्धसंकल्पः सिद्धिदः सिद्धिसाधनः ।। ४० ।।

असंख्येयः—नाम और गुणोंकी संख्यासे शून्य,

अप्रमेयात्मा—किसीसे भी मापे न जा सकनेवाले, **विशिष्टः**—सबसे उत्कृष्ट, **शिष्टकृत्**—शासन करनेवाले, **शुचिः**—परम शुद्ध, **सिद्धार्थः**—इच्छित अर्थको सर्वथा सिद्ध कर चुकनेवाले, **सिद्धसंकल्पः**—सत्यसंकल्पवाले, **सिद्धिदः**—कर्म करनेवालोंको उनके अधिकारके अनुसार फल देनेवाले, **सिद्धिसाधनः**—सिद्धिरूप क्रियाके साधक (२४७—२५५) ॥ ४० ॥

वृषाही वृषभो विष्णुर्वृषपर्वा वृषोदरः।
वर्धनो वर्धमानश्च विविक्तः श्रुतिसागरः।४१।

वृषाही—द्वादशाहादि यज्ञोंको अपनेमें स्थित रखनेवाले, **वृषभः**—भक्तोंके लिये इच्छित वस्तुओंकी वर्षा करनेवाले, **विष्णुः**—शुद्ध सत्त्वमूर्ति, **वृषपर्वा**—परमधाममें आरूढ़ होनेकी इच्छावालोंके लिये धर्मरूप सीढ़ियोंवाले, **वृषोदरः**—अपने उदरमें धर्मको धारण करनेवाले, **वर्धनः**—भक्तोंको बढ़ानेवाले, **वर्धमानः**—संसाररूपसे बढ़नेवाले, **विविक्तः**—संसारसे पृथक् रहनेवाले, **श्रुतिसागरः**—वेदरूप जलके समुद्र (२५६—२६४) ॥ ४१ ॥

सुभुजो दुर्धरो वाग्मी महेन्द्रो वसुदो वसुः।
नैकरूपो बृहद्रूपः शिपिविष्टः प्रकाशनः।४२।

सुभुजः—जगत्की रक्षा करनेवाली अति सुन्दर भुजाओंवाले, **दुर्धरः**—दूसरोंसे धारण न किये जा सकनेवाले पृथ्वी आदि लोकधारक पदार्थोंको भी धारण करनेवाले और स्वयं किसीसे धारण न किये जा सकनेवाले, **वाग्मी**—वेदमयी वाणीको उत्पन्न करनेवाले, **महेन्द्रः**—ईश्वरोंके भी ईश्वर, **वसुदः**—धन देनेवाले, **वसुः**—धनरूप, **नैकरूपः**—अनेक रूपधारी, **बृहद्रूपः**—विश्वरूपधारी, **शिपिविष्टः**—सूर्यकिरणोंमें स्थित रहनेवाले, **प्रकाशनः**—सबको प्रकाशित करनेवाले (२६५—२७४) ॥ ४२ ॥

ओजस्तेजोद्युतिधरः प्रकाशात्मा प्रतापनः।
ऋद्धः स्पष्टाक्षरो मन्त्रश्चन्द्रांशुर्भास्करद्युतिः। ४३।

ओजस्तेजोद्युतिधरः—प्राण और बल, शूरवीरता आदि गुण तथा ज्ञानकी दीप्तिको धारण करनेवाले, **प्रकाशात्मा**—प्रकाशरूप विग्रहवाले, **प्रतापनः**—सूर्य आदि अपनी विभूतियोंसे विश्वको तप्त करनेवाले, **ऋद्धः**—धर्म, ज्ञान और वैराग्यादिसे सम्पन्न, **स्पष्टाक्षरः**—ओंकाररूप स्पष्ट अक्षरवाले, **मन्त्रः**—ऋक्, साम और यजुरूप मन्त्रोंसे जाननेयोग्य, **चन्द्रांशुः**—

संसारतापसे संतप्तचित्त पुरुषोंको चन्द्रमाकी किरणोंके समान आह्लादित करनेवाले, **भास्करद्युतिः**—सूर्यके समान प्रकाशस्वरूप (२७५—२८२) ॥ ४३ ॥

अमृतांशूद्भवो भानुः शशबिन्दुः सुरेश्वरः ।
औषधं जगतः सेतुः सत्यधर्मपराक्रमः । ४४ ।

अमृतांशूद्भवः—समुद्रमन्थन करते समय चन्द्रमाको उत्पन्न करनेवाले समुद्ररूप, **भानुः**—भासनेवाले, **शशबिन्दुः**—खरगोशके समान चिह्नवाले, चन्द्रमाकी तरह सम्पूर्ण प्रजाका पोषण करनेवाले, **सुरेश्वरः**—देवताओंके ईश्वर, **औषधम्**—संसाररोगको मिटानेके लिये औषधरूप, **जगतः सेतुः**—संसारसागरको पार करानेके लिये सेतुरूप, **सत्यधर्मपराक्रमः**—सत्यरूप धर्म और पराक्रमवाले (२८३—२८९) ॥ ४४ ॥

भूतभव्यभवन्नाथः पवनः पावनोऽनलः ।
कामहा कामकृत्कान्तः कामः कामप्रदः प्रभुः । ४५ ।

भूतभव्यभवन्नाथः—भूत, भविष्य और वर्तमान सभी विषयोंके स्वामी, **पवनः**—वायुरूप, **पावनः**—दृष्टिमात्रसे जगत्‌को पवित्र करनेवाले, **अनलः**—अग्निस्वरूप, **कामहा**—अपने भक्तजनोंके सकामभावको नष्ट करनेवाले,

कामकृत्—भक्तोंकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, **कान्तः**—कमनीयरूप, **कामः**—(क) ब्रह्मा, (अ) विष्णु, (म) महादेव—इस प्रकार त्रिदेवरूप, **कामप्रदः**—भक्तोंको उनकी कामना की हुई वस्तुएँ प्रदान करनेवाले, **प्रभुः**—सर्वोत्कृष्ट सर्वसामर्थ्यवान् स्वामी (२९०—२९९) ॥ ४५ ॥

युगादिकृद्युगावर्तो नैकमायो महाशनः ।
अदृश्योऽव्यक्तरूपश्च सहस्रजिदनन्तजित् ॥ ४६ ॥

युगादिकृत्—युगादिका आरम्भ करनेवाले, **युगावर्तः**—चारों युगोंको चक्रके समान घुमानेवाले, **नैकमायः**—अनेकों मायाओंको धारण करनेवाले, **महाशनः**—कल्पके अन्तमें सबको ग्रसन करनेवाले, **अदृश्यः**—समस्त ज्ञानेन्द्रियोंके अविषय, **अव्यक्तरूपः**—निराकार स्वरूपवाले, **सहस्रजित्**—युद्धमें हजारों देवशत्रुओंको जीतनेवाले, **अनन्तजित्**—युद्ध और क्रीड़ा आदिमें सर्वत्र समस्त भूतोंको जीतनेवाले (३००—३०७) ॥ ४६ ॥

इष्टोऽविशिष्टः शिष्टेष्टः शिखण्डी नहुषो वृषः ।
क्रोधहा क्रोधकृत्कर्ता विश्वबाहुर्महीधरः ॥ ४७ ॥

इष्टः—परमानन्दरूप होनेसे सर्वप्रिय, **अविशिष्टः**—सम्पूर्ण विशेषणोंसे रहित, सर्वश्रेष्ठ,

शिष्टेष्टः—शिष्ट पुरुषोंके इष्टदेव, **शिखण्डी**—मयूरपिच्छको अपना शिरोभूषण बना लेनेवाले, **नहुषः**—भूतोंको मायासे बाँधनेवाले, **वृषः**—कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, **क्रोधहा**—क्रोधका नाश करनेवाले, **क्रोधकृत्कर्ता**—दुष्टोंपर क्रोध करनेवाले और जगत्को उनके कर्मोंके अनुसार रचनेवाले, **विश्वबाहुः**—सब ओर बाहुओंवाले, **महीधरः**—पृथ्वीको धारण करनेवाले (३०८—३१७) ॥ ४७ ॥

अच्युतः प्रथितः प्राणः प्राणदो वासवानुजः।
अपां निधिरधिष्ठानमप्रमत्तः प्रतिष्ठितः। ४८।

अच्युतः—छः भावविकारोंसे रहित, **प्रथितः**—जगत्की उत्पत्ति आदि कर्मोंके कारण, **प्राणः**—हिरण्यगर्भरूपसे प्रजाको जीवित रखनेवाले, **प्राणदः**—सबका भरण-पोषण करनेवाले, **वासवानुजः**—वामनावतारमें कश्यपजीद्वारा अदितिसे इन्द्रके अनुजरूपमें उत्पन्न होनेवाले, **अपां निधिः**—जलको एकत्र रखनेवाले समुद्ररूप, **अधिष्ठानम्**—उपादान कारणरूपसे सब भूतोंके आश्रय, **अप्रमत्तः**—अधिकारियोंको उनके कर्मानुसार फल देनेमें कभी प्रमाद न करनेवाले, **प्रतिष्ठितः**—अपनी

महिमामें स्थित (३१८—३२६) ॥ ४८ ॥

स्कन्दः स्कन्दधरो धुर्यो वरदो वायुवाहनः।
वासुदेवो बृहद्भानुरादिदेवः पुरन्दरः॥ ४९॥

स्कन्दः—स्वामिकार्तिकेयरूप, **स्कन्दधरः**—धर्मपथको धारण करनेवाले, **धुर्यः**—समस्त भूतोंके जन्मादिरूप धुरको धारण करनेवाले, **वरदः**—इच्छित वर देनेवाले, **वायुवाहनः**—सारे वायुभेदोंको चलानेवाले, **वासुदेवः**—समस्त प्राणियोंको अपनेमें बसानेवाले तथा सब भूतोंमें सर्वात्मारूपसे बसनेवाले दिव्यस्वरूप, **बृहद्भानुः**—महान् किरणोंसे युक्त एवं सम्पूर्ण जगत्को प्रकाशित करनेवाले, **आदिदेवः**—सबके आदिकारण देव, **पुरन्दरः**—असुरोंके नगरोंका ध्वंस करनेवाले (३२७—३३५) ॥ ४९ ॥

अशोकस्तारणस्तारः शूरः शौरिर्जनेश्वरः।
अनुकूलः शतावर्तः पद्मी पद्मनिभेक्षणः॥ ५०॥

अशोकः—सब प्रकारके शोकसे रहित, **तारणः**—संसारसागरसे तारनेवाले, **तारः**—जन्म-जरा-मृत्युरूप भयसे तारनेवाले, **शूरः**—पराक्रमी, **शौरिः**—शूरवीर श्रीवसुदेवजीके पुत्र, **जनेश्वरः**—समस्त जीवोंके स्वामी **अनुकूलः**—आत्मारूप होनेसे सबके अनुकूल, **शतावर्तः**—

धर्मरक्षाके लिये सैकड़ों अवतार लेनेवाले, **पद्मी**—अपने हाथमें कमल धारण करनेवाले, **पद्मनिभेक्षणः**—कमलके समान कोमल दृष्टिवाले (३३६—३४५) ॥ ५० ॥

पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत्।
महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः। ५१।

पद्मनाभः—हृदय-कमलके मध्य निवास करनेवाले, **अरविन्दाक्षः**—कमलके समान आँखोंवाले, **पद्मगर्भः**—हृदय-कमलमें ध्यान करनेयोग्य, **शरीरभृत्**—अन्नरूपसे सबके शरीरोंका भरण करनेवाले, **महर्द्धिः**—महान् विभूतिवाले, **ऋद्धः**—सबमें बढ़े-चढ़े, **वृद्धात्मा**—पुरातन आत्मवान्, **महाक्षः**—विशाल नेत्रोंवाले, **गरुडध्वजः**—गरुड़के चिह्नसे युक्त ध्वजावाले (३४६—३५४) ॥ ५१ ॥

अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान्समितिञ्जयः। ५२।

अतुलः—तुलनारहित, **शरभः**—शरीरोंको प्रत्यगात्मरूपसे प्रकाशित करनेवाले, **भीमः**—जिससे पापियोंको भय हो ऐसे भयानक, **समयज्ञः**—समभावरूप यज्ञसे प्राप्त होनेवाले, **हविर्हरिः**—यज्ञोंमें हविर्भागको और अपना स्मरण करनेवालोंके पापोंको हरण करनेवाले,

धर्मरक्षाके लिये सैकड़ों अवतार लेनेवाले, **पद्मी**—अपने हाथमें कमल धारण करनेवाले, **पद्मनिभेक्षणः**—कमलके समान कोमल दृष्टिवाले (३३६—३४५) ॥ ५० ॥

पद्मनाभोऽरविन्दाक्षः पद्मगर्भः शरीरभृत्।
महर्द्धिर्ऋद्धो वृद्धात्मा महाक्षो गरुडध्वजः। ५१।

पद्मनाभः—हृदय-कमलके मध्य निवास करनेवाले, **अरविन्दाक्षः**—कमलके समान आँखोंवाले, **पद्मगर्भः**—हृदय-कमलमें ध्यान करनेयोग्य, **शरीरभृत्**—अन्नरूपसे सबके शरीरोंका भरण करनेवाले, **महर्द्धिः**—महान् विभूतिवाले, **ऋद्धः**—सबमें बढ़े-चढ़े, **वृद्धात्मा**—पुरातन आत्मवान्, **महाक्षः**—विशाल नेत्रोंवाले, **गरुडध्वजः**—गरुड़के चिह्नसे युक्त ध्वजावाले (३४६—३५४) ॥ ५१ ॥

अतुलः शरभो भीमः समयज्ञो हविर्हरिः।
सर्वलक्षणलक्षण्यो लक्ष्मीवान्समितिञ्जयः। ५२।

अतुलः—तुलनारहित, **शरभः**—शरीरोंको प्रत्यगात्मरूपसे प्रकाशित करनेवाले, **भीमः**—जिससे पापियोंको भय हो ऐसे भयानक, **समयज्ञः**—समभावरूप यज्ञसे प्राप्त होनेवाले, **हविर्हरिः**—यज्ञोंमें हविर्भागको और अपना स्मरण करनेवालोंके पापोंको हरण करनेवाले,

सर्वलक्षणलक्षण्यः—समस्त लक्षणोंसे लक्षित होनेवाले, **लक्ष्मीवान्**—अपने वक्षःस्थलमें लक्ष्मीजीको सदा बसानेवाले, **समितिञ्जयः**—संग्रामविजयी (३५५—३६२) ॥ ५२ ॥

विक्षरो रोहितो मार्गो हेतुर्दामोदरः सहः।
महीधरो महाभागो वेगवानमिताशनः।५३।

विक्षरः—नाशरहित, **रोहितः**—मत्स्यविशेषका स्वरूप धारण करके अवतार लेनेवाले, **मार्गः**—परमानन्दप्राप्तिके साधनस्वरूप, **हेतुः**—संसारके निमित्त और उपादान-कारण, **दामोदरः**—यशोदाजीद्वारा रस्सीसे बँधे हुए उदरवाले, **सहः**—भक्तजनोंके अपराधोंको सहन करनेवाले, **महीधरः**—पर्वतरूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले, **महाभागः**—महान् भाग्यशाली, **वेगवान्**—तीव्र गतिवाले, **अमिताशनः**—सारे विश्वको भक्षण करनेवाले (३६३—३७२) ॥ ५३ ॥

उद्भवः क्षोभणो देवः श्रीगर्भः परमेश्वरः।
करणं कारणं कर्ता विकर्ता गहनो गुहः।५४।

उद्भवः—जगत्की उत्पत्तिके उपादानकारण, **क्षोभणः**—जगत्की उत्पत्तिके समय प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध करनेवाले, **देवः**—

प्रकाशस्वरूप, **श्रीगर्भः**—सम्पूर्ण ऐश्वर्यको अपने उदरगर्भमें रखनेवाले, **परमेश्वरः**—सर्वश्रेष्ठ शासन करनेवाले, **करणम्**—संसारकी उत्पत्तिके सबसे बड़े साधन, **कारणम्**—जगत्के उपादान और निमित्तकारण, **कर्ता**—सब प्रकारसे स्वतन्त्र, **विकर्ता**—विचित्र भुवनोंकी रचना करनेवाले, **गहनः**—अपने विलक्षण स्वरूप, सामर्थ्य और लीलादिके कारण पहचाने न जा सकनेवाले, **गुहः**—मायासे अपने स्वरूपको ढक लेनेवाले (३७३—३८३) ॥ ५४ ॥

व्यवसायो व्यवस्थानः संस्थानः स्थानदो ध्रुवः ।
परर्द्धिः परमस्पष्टस्तुष्टः पुष्टः शुभेक्षणः ।५५ ।

व्यवसायः—ज्ञानमात्रस्वरूप, **व्यवस्थानः**—लोकपालादिकोंको, समस्त जीवोंको, चारों वर्णाश्रमोंको एवं उनके धर्मोंको व्यवस्थापूर्वक रचनेवाले, **संस्थानः**—प्रलयके सम्यक् स्थान, **स्थानदः**—ध्रुवादि भक्तोंको स्थान देनेवाले, **ध्रुवः**—अविनाशी, **परर्द्धिः**—श्रेष्ठ विभूतिवाले, **परमस्पष्टः**—ज्ञानस्वरूप होनेसे परम स्पष्टरूप अवतारविग्रहमें सबके सामने प्रत्यक्ष प्रकट होनेवाले, **तुष्टः**—एकमात्र परमानन्दस्वरूप, **पुष्टः**—

सर्वत्र परिपूर्ण, **शुभेक्षणः**—दर्शनमात्रसे कल्याण करनेवाले (३८४—३९३) ॥ ५५ ॥

रामो विरामो विरजो मार्गो नेयो नयोऽनयः।
वीरः शक्तिमतां श्रेष्ठो धर्मो धर्मविदुत्तमः।५६।

रामः—योगिजनोंके स्मरण करनेके लिये नित्यानन्दस्वरूप, **विरामः**—प्रलयके समय प्राणियोंको अपनेमें विराम देनेवाले, **विरजः**—रजोगुण तथा तमोगुणसे सर्वथा शून्य, **मार्गः**—मुमुक्षुजनोंके अमर होनेके साधनस्वरूप, **नेयः**—उत्तम ज्ञानसे ग्रहण करनेयोग्य, **नयः**—सबको नियममें रखनेवाले, **अनयः**—स्वतन्त्र, **वीरः**—पराक्रमशाली, **शक्तिमतां श्रेष्ठः**—शक्तिमानोंमें भी अतिशय शक्तिमान्, **धर्मः**—श्रुतिस्मृतिरूप धर्म, **धर्मविदुत्तमः**—समस्त धर्मवेत्ताओंमें उत्तम (३९४—४०४) ॥ ५६ ॥

वैकुण्ठः पुरुषः प्राणः प्राणदः प्रणवः पृथुः।
हिरण्यगर्भः शत्रुघ्नो व्याप्तो वायुरधोक्षजः।५७।

वैकुण्ठः—परमधामस्वरूप, **पुरुषः**—विश्वरूप शरीरमें शयन करनेवाले, **प्राणः**—प्राणवायुरूपसे चेष्टा करनेवाले, **प्राणदः**—सर्गके आदिमें प्राण प्रदान करनेवाले,

प्रणवः—जिसको वेद भी प्रणाम करते हैं, वे भगवान्, **पृथुः**—विराट्‌रूपसे विस्तृत होनेवाले, **हिरण्यगर्भः**—ब्रह्मारूपसे प्रकट होनेवाले, **शत्रुघ्नः**—शत्रुओंको मारनेवाले, **व्याप्तः**—कारणरूपसे सब कार्योंको व्याप्त करनेवाले, **वायुः**—पवनरूप, **अधोक्षजः**—अपने स्वरूपसे क्षीण न होनेवाले (४०५—४१५) ॥ ५७ ॥

ऋतुः सुदर्शनः कालः परमेष्ठी परिग्रहः ।
उग्रः संवत्सरो दक्षो विश्रामो विश्वदक्षिणः ।५८।

ऋतुः—कालरूपसे लक्षित होनेवाले, **सुदर्शनः**—भक्तोंको सुगमतासे ही दर्शन दे देनेवाले, **कालः**—सबकी गणना करनेवाले, **परमेष्ठी**—अपनी प्रकृष्ट महिमामें स्थित रहनेके स्वभाववाले, **परिग्रहः**—शरणार्थियोंके द्वारा सब ओरसे ग्रहण किये जानेवाले, **उग्रः**—सूर्यादिके भी भयके कारण, **संवत्सरः**—सम्पूर्ण भूतोंके वासस्थान, **दक्षः**—सब कार्योंको बड़ी कुशलतासे करनेवाले, **विश्रामः**—विश्रामकी इच्छावाले, मुमुक्षुओंको मोक्ष देनेवाले, **विश्वदक्षिणः**—बलिके यज्ञमें समस्त विश्वको दक्षिणारूपमें प्राप्त करनेवाले (४१६—४२५) ॥ ५८ ॥

विस्तारः स्थावरस्थाणुः प्रमाणं बीजमव्ययम्।
अर्थोऽनर्थो महाकोशो महाभोगो महाधनः।५९।

विस्तारः—समस्त लोकोंके विस्तारके कारण, **स्थावरस्थाणुः**—स्वयं स्थितिशील रहकर पृथ्वी आदि स्थितिशील पदार्थोंको अपनेमें स्थित रखनेवाले, **प्रमाणम्**—ज्ञानस्वरूप होनेके कारण स्वयं प्रमाणरूप, **बीजमव्ययम्**—संसारके अविनाशी कारण, **अर्थः**—सुखस्वरूप होनेके कारण सबके द्वारा प्रार्थनीय, **अनर्थः**—पूर्णकाम होनेके कारण प्रयोजनरहित, **महाकोशः**—बड़े खजानेवाले, **महाभोगः**—सुखरूप महान् भोगवाले, **महाधनः**—यथार्थ और अतिशय धनस्वरूप (४२६—४३४)॥५९॥

अनिर्विण्णः स्थविष्ठोऽभूर्धर्मयूपो महामखः।
नक्षत्रनेमिर्नक्षत्री क्षमः क्षामः समीहनः।६०।

अनिर्विण्णः—उकताहटरूप विकारसे रहित, **स्थविष्ठः**—विराट्रूपसे स्थित, **अभूः**—अजन्मा, **धर्मयूपः**—धर्मके स्तम्भरूप, **महामखः**—अर्पित किये हुए यज्ञोंको निर्वाणरूप महान् फलदायक बना देनेवाले, **नक्षत्रनेमिः**—समस्त नक्षत्रोंके केन्द्रस्वरूप, **नक्षत्री**—चन्द्ररूप, **क्षमः**—समस्त कार्योंमें समर्थ, **क्षामः**—

समस्त विकारोंके क्षीण हो जानेपर परमात्मभावसे स्थित, **समीहनः**—सृष्टि आदिके लिये भलीभाँति चेष्टा करनेवाले (४३५—४४४) ॥ ६० ॥

यज्ञ इज्यो महेज्यश्च क्रतुः सत्रं सतां गतिः।
सर्वदर्शी विमुक्तात्मा सर्वज्ञो ज्ञानमुत्तमम्।६१।

यज्ञः—भगवान् विष्णु, **इज्यः**—पूजनीय, **महेज्यः**—सबसे अधिक उपासनीय, **क्रतुः**—यूपसंयुक्त यज्ञस्वरूप, **सत्रम्**—सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेवाले, **सतां गतिः**—सत्पुरुषोंके परम प्रापणीय स्थान, **सर्वदर्शी**—समस्त प्राणियोंको और उनके कार्योंको देखनेवाले, **विमुक्तात्मा**—सांसारिक बन्धनसे रहित आत्मस्वरूप, **सर्वज्ञः**—सबको जाननेवाले, **ज्ञानमुत्तमम्**—सर्वोत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप (४४५—४५४) ॥ ६१ ॥

सुव्रतः सुमुखः सूक्ष्मः सुघोषः सुखदः सुहृत्।
मनोहरो जितक्रोधो वीरबाहुर्विदारणः।६२।

सुव्रतः—प्रणतपालनादि श्रेष्ठ व्रतोंवाले, **सुमुखः**—सुन्दर और प्रसन्न मुखवाले, **सूक्ष्मः**—अणुसे भी अणु, **सुघोषः**—सुन्दर और गम्भीर वाणी बोलनेवाले, **सुखदः**—अपने भक्तोंको सब प्रकारसे सुख देनेवाले, **सुहृत्**—

प्राणिमात्रपर अहैतुकी दया करनेवाले परम मित्र, **मनोहरः**—अपने रूप-लावण्य और मधुर भाषणादिसे सबके मनको हरनेवाले, **जितक्रोधः**—क्रोधपर विजय करनेवाले अर्थात् अपने साथ अत्यन्त अनुचित व्यवहार करनेवालेपर भी क्रोध न करनेवाले, **वीरबाहुः**—अत्यन्त पराक्रमशाली भुजाओंसे युक्त, **विदारणः**—अधर्मियोंको नष्ट करनेवाले (४५५—४६४) ॥ ६२ ॥

स्वापनः स्ववशो व्यापी नैकात्मा नैककर्मकृत्।
वत्सरो वत्सलो वत्सी रत्नगर्भो धनेश्वरः ॥ ६३ ॥

स्वापनः—प्रलयकालमें समस्त प्राणियोंको अज्ञाननिद्रामें शयन करानेवाले, **स्ववशः**—स्वतन्त्र, **व्यापी**—आकाशकी भाँति सर्वव्यापी, **नैकात्मा**—प्रत्येक युगमें लोकोद्धारके लिये अनेक रूप धारण करनेवाले, **नैककर्मकृत्**—जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप तथा भिन्न-भिन्न अवतारोंमें मनोहर लीलारूप अनेक कर्म करनेवाले, **वत्सरः**—सबके निवासस्थान, **वत्सलः**—भक्तोंके परम स्नेही, **वत्सी**—वृन्दावनमें बछड़ोंका पालन करनेवाले, **रत्नगर्भः**—रत्नोंको अपने गर्भमें धारण करनेवाले समुद्ररूप, **धनेश्वरः**—सब प्रकारके धनोंके स्वामी (४६५—४७४) ॥ ६३ ॥

धर्मगुब्धर्मकृद्धर्मी सदसत्क्षरमक्षरम्।
अविज्ञाता सहस्त्रांशुर्विधाता कृतलक्षणः। ६४।

धर्मगुप्—धर्मकी रक्षा करनेवाले, **धर्मकृत्**—धर्मकी स्थापना करनेके लिये स्वयं धर्मका आचरण करनेवाले, **धर्मी**—सम्पूर्ण धर्मोंके आधार, **सत्**—सत्यस्वरूप, **असत्**—स्थूल जगत्स्वरूप, **क्षरम्**—सर्वभूतमय, **अक्षरम्**—अविनाशी, **अविज्ञाता**—क्षेत्रज्ञ जीवात्माको विज्ञाता कहते हैं, उनसे विलक्षण भगवान् विष्णु, **सहस्त्रांशुः**—हजारों किरणोंवाले सूर्यस्वरूप, **विधाता**—सबको अच्छी प्रकार धारण करनेवाले, **कृतलक्षणः**—श्रीवत्स आदि चिह्नोंको धारण करनेवाले (४७५—४८५)॥६४॥

गभस्तिनेमिः सत्त्वस्थः सिंहो भूतमहेश्वरः।
आदिदेवो महादेवो देवेशो देवभृद्गुरुः। ६५।

गभस्तिनेमिः—किरणोंके बीचमें सूर्यरूपसे स्थित, **सत्त्वस्थः**—अन्तर्यामीरूपसे समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित रहनेवाले, **सिंहः**—भक्त प्रह्लादके लिये नृसिंहरूप धारण करनेवाले, **भूतमहेश्वरः**—सम्पूर्ण प्राणियोंके महान् ईश्वर, **आदिदेवः**—सबके आदि कारण और

दिव्यस्वरूप, **महादेवः**—ज्ञानयोग और ऐश्वर्य आदि महिमाओंसे युक्त, **देवेशः**—समस्त देवोंके स्वामी, **देवभृद्गुरुः**—देवोंका विशेषरूपसे भरण-पोषण करनेवाले, उनके परम गुरु (४८६—४९३) ॥ ६५ ॥

उत्तरो गोपतिर्गोप्ता ज्ञानगम्यः पुरातनः ।
शरीरभूतभृद्भोक्ता कपीन्द्रो भूरिदक्षिणः । ६६ ।

उत्तरः—संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाले और सर्वश्रेष्ठ, **गोपतिः**—गोपालरूपसे गायोंकी रक्षा करनेवाले, **गोप्ता**—समस्त प्राणियोंका पालन और रक्षा करनेवाले, **ज्ञानगम्यः**—ज्ञानके द्वारा जाननेमें आनेवाले, **पुरातनः**—सदा एकरस रहनेवाले, सबके आदि पुराणपुरुष, **शरीरभूतभृत्**—शरीरके उत्पादक पंचभूतोंका प्राणरूपसे पालन करनेवाले, **भोक्ता**—निरतिशय आनन्दपुंजोंको भोगनेवाले, **कपीन्द्रः**—बंदरोंके स्वामी श्रीराम, **भूरिदक्षिणः**—श्रीरामादि अवतारोंमें यज्ञ करते समय बहुत-सी दक्षिणा प्रदान करनेवाले (४९४—५०२)॥ ६६ ॥

सोमपोऽमृतपः सोमः पुरुजित्पुरुसत्तमः ।
विनयो जयः सत्यसंधो दाशार्हः सात्वतां पतिः । ६७ ।

सोमपः—यज्ञोंमें देवरूपसे और यजमानरूपसे

सोमरसका पान करनेवाले, **अमृतपः**—समुद्र-मन्थनसे निकाला हुआ अमृत देवोंको पिलाकर स्वयं पीनेवाले, **सोमः**—ओषधियोंका पोषण करनेवाले चन्द्रमारूप, **पुरुजित्**—बहुतोंपर विजय लाभ करनेवाले, **पुरुसत्तमः**—विश्वरूप और अत्यन्त श्रेष्ठ, **विनयः**—दुष्टोंको दण्ड देनेवाले, **जयः**—सबपर विजय प्राप्त करनेवाले, **सत्यसंधः**—सच्ची प्रतिज्ञा करनेवाले, **दाशार्हः**—दशार्हकुलमें प्रकट होनेवाले, **सात्वतां पतिः**—यादवोंके और अपने भक्तोंके स्वामी यानी उनका योगक्षेम चलानेवाले (५०३—५१२)॥ ६७॥

जीवो विनयितासाक्षी मुकुन्दोऽमितविक्रमः।
अम्भोनिधिरनन्तात्मा महोदधिशयोऽन्तकः। ६८।

जीवः—क्षेत्रज्ञरूपसे प्राणोंको धारण करनेवाले, **विनयितासाक्षी**—अपने शरणापन्न भक्तोंके विनयभावको तत्काल प्रत्यक्ष अनुभव करनेवाले, **मुकुन्दः**—मुक्तिदाता, **अमितविक्रमः**—वामनावतारमें पृथ्वी नापते समय अत्यन्त विस्तृत पैर रखनेवाले, **अम्भोनिधिः**—जलके निधान समुद्रस्वरूप, **अनन्तात्मा**—अनन्तमूर्ति, **महोदधिशयः**—प्रलयकालके महान् समुद्रमें शयन करनेवाले, **अन्तकः**—प्राणियोंका संहार करनेवाले

मृत्युस्वरूप (५१३—५२०) ॥ ६८ ॥

अजो महार्हः स्वाभाव्यो जितामित्रः प्रमोदनः।
आनन्दो नन्दनो नन्दः सत्यधर्मा त्रिविक्रमः। ६९।

अजः—अकार भगवान् विष्णुका वाचक है, उससे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मा, **महार्हः**—पूजनीय, **स्वाभाव्यः**—नित्य सिद्ध होनेके कारण स्वभावसे ही उत्पन्न न होनेवाले, **जितामित्रः**—रावण-शिशुपालादि शत्रुओंको जीतनेवाले, **प्रमोदनः**—स्मरणमात्रसे नित्य प्रमुदित करनेवाले, **आनन्दः**—आनन्दस्वरूप, **नन्दनः**—सबको प्रसन्न करनेवाले, **नन्दः**—सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न, **सत्यधर्मा**—धर्म-ज्ञानादि सब गुणोंसे युक्त, **त्रिविक्रमः**—तीन डगमें तीनों लोकोंको नापनेवाले (५२१—५३०) ॥ ६९ ॥

महर्षिः कपिलाचार्यः कृतज्ञो मेदिनीपतिः।
त्रिपदस्त्रिदशाध्यक्षो महाशृङ्गः कृतान्तकृत्। ७०।

महर्षिः कपिलाचार्यः—सांख्यशास्त्रके प्रणेता भगवान् कपिलाचार्य, **कृतज्ञः**—किये हुएको जाननेवाले यानी अपने भक्तोंकी सेवाको बहुत मानकर अपनेको उनका ऋणी समझनेवाले, **मेदिनीपतिः**—पृथ्वीके स्वामी, **त्रिपदः**—त्रिलोकीरूप तीन पैरोंवाले विश्वरूप,

त्रिदशाध्यक्षः—देवताओंके स्वामी, **महाशृङ्गः**—मत्स्यावतारमें महान् सींग धारण करनेवाले, **कृतान्तकृत्**—स्मरण करनेवालोंके समस्त कर्मोंका अन्त करनेवाले (५३१—५३७) ॥ ७० ॥

महावराहो गोविन्दः सुषेणः कनकाङ्गदी।
गुह्यो गभीरो गहनो गुप्तश्चक्रगदाधरः ।७१।

महावराहः—हिरण्याक्षका वध करनेके लिये महावराहरूप धारण करनेवाले, **गोविन्दः**—नष्ट हुई पृथ्वीको पुनः प्राप्त कर लेनेवाले, **सुषेणः**—पार्षदोंके समुदायरूप सुन्दर सेनासे सुसज्जित, **कनकाङ्गदी**—सुवर्णका बाजूबंद धारण करनेवाले, **गुह्यः**—हृदयाकाशमें छिपे रहनेवाले, **गभीरः**—अतिशय गम्भीर स्वभाववाले, **गहनः**—जिनके स्वरूपमें प्रविष्ट होना अत्यन्त कठिन हो—ऐसे, **गुप्तः**—वाणी और मनसे जाननेमें न आनेवाले, **चक्रगदाधरः**—भक्तोंकी रक्षा करनेके लिये चक्र और गदा आदि दिव्य आयुधोंको धारण करनेवाले (५३८—५४६) ॥ ७१ ॥

वेधाः स्वाङ्गोऽजितः कृष्णो दृढः सङ्कर्षणोऽच्युतः ।
वरुणो वारुणो वृक्षः पुष्कराक्षो महामनाः ।७२।

वेधाः—सब कुछ विधान करनेवाले, **स्वाङ्गः**—कार्य करनेमें स्वयं ही सहकारी, **अजितः**—किसीके द्वारा न जीते जानेवाले, **कृष्णः**—श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण, **दृढः**—अपने स्वरूप और सामर्थ्यसे कभी भी च्युत न होनेवाले, **सङ्कर्षणोऽच्युतः**—प्रलयकालमें एक साथ सबका संहार करनेवाले और जिनका कभी किसी भी कारणसे पतन न हो सके ऐसे अविनाशी, **वरुणः**—जलके स्वामी वरुण देवता, **वारुणः**—वरुणके पुत्र वसिष्ठस्वरूप, **वृक्षः**—अश्वत्थवृक्षरूप, **पुष्कराक्षः**—हृदयकमलमें चिन्तन करनेसे प्रत्यक्ष होनेवाले, **महामनाः**—संकल्पमात्रसे उत्पत्ति, पालन और संहार आदि समस्त लीला करनेकी शक्तिवाले (५४७—५५७) ॥ ७२ ॥

भगवान् भगहानन्दी वनमाली हलायुधः।
आदित्यो ज्योतिरादित्यः सहिष्णुर्गतिसत्तमः। ७३।

भगवान्—उत्पत्ति और प्रलय, आना और जाना तथा विद्या और अविद्याको जाननेवाले एवं सर्वैश्वर्यादि छहों भगोंसे युक्त, **भगहा**—अपने भक्तोंका प्रेम बढ़ानेके लिये उनके ऐश्वर्यका हरण करनेवाले और प्रलयकालमें सबके ऐश्वर्यको नष्ट करनेवाले,

आनन्दी—परमसुखस्वरूप, **वनमाली**—वैजयन्ती वनमाला धारण करनेवाले, **हलायुधः**—हलरूप शस्त्रको धारण करनेवाले, बलभद्रस्वरूप, **आदित्यः**—अदितिपुत्र वामनभगवान्, **ज्योतिरादित्यः**—सूर्यमण्डलमें विराजमान ज्योतिःस्वरूप, **सहिष्णुः**—समस्त द्वन्द्वोंको सहन करनेमें समर्थ, **गतिसत्तमः**—सत्पुरुषोंके परम गन्तव्य और सर्वश्रेष्ठ (५५८—५६६) ॥ ७३ ॥

सुधन्वा खण्डपरशुर्दारुणो द्रविणप्रदः।
दिविस्पृक्सर्वदृग्व्यासो वाचस्पतिरयोनिजः ।७४।

सुधन्वा—अतिशय सुन्दर शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले, **खण्डपरशुः**—शत्रुओंका खण्डन करनेवाले, फरसेको धारण करनेवाले परशुरामस्वरूप, **दारुणः**—सन्मार्गविरोधियोंके लिये महान् भयंकर, **द्रविणप्रदः**—अर्थार्थी भक्तोंको धन-सम्पत्ति प्रदान करनेवाले, **दिविस्पृक्**—स्वर्गलोकतक व्याप्त, **सर्वदृग्व्यासः**—सबके द्रष्टा एवं वेदका विभाग करनेवाले श्रीकृष्णद्वैपायनस्वरूप, **वाचस्पतिरयोनिजः**—विद्याके स्वामी तथा बिना योनिके स्वयं ही प्रकट होनेवाले (५६७—५७३) ॥ ७४ ॥

त्रिसामा सामगः साम निर्वाणं भेषजं भिषक्।
संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणम्।७५।

त्रिसामा—देवव्रत आदि तीन सामश्रुतियोंद्वारा जिनकी स्तुति की जाती है—ऐसे परमेश्वर, **सामगः**—सामवेदका गान करनेवाले, **साम**—सामवेदस्वरूप, **निर्वाणम्**—परमशान्तिके निधान परमानन्दस्वरूप, **भेषजम्**—संसाररोगकी ओषधि, **भिषक्**—संसाररोगका नाश करनेके लिये गीतारूप उपदेशामृतका पान करानेवाले परम वैद्य, **संन्यासकृत्**—मोक्षके लिये संन्यासाश्रम और संन्यासयोगका निर्माण करनेवाले, **शमः**—उपशमताका उपदेश देनेवाले, **शान्तः**—परमशान्ताकृति, **निष्ठा**—सबकी स्थितिके आधार अधिष्ठानस्वरूप, **शान्तिः**—परम शान्तिस्वरूप, **परायणम्**—मुमुक्षु पुरुषोंके परम प्राप्य स्थान (५७४—५८५)॥७५॥

शुभाङ्गः शान्तिदः स्रष्टा कुमुदः कुवलेशयः।
गोहितो गोपतिर्गोप्ता वृषभाक्षो वृषप्रियः।७६।

शुभाङ्गः—अति मनोहर परम सुन्दर अंगोंवाले, **शान्तिदः**—परमशान्ति देनेवाले, **स्रष्टा**—सर्गके आदिमें सबकी रचना करनेवाले, **कुमुदः**—पृथ्वीपर प्रसन्नतापूर्वक

लीला करनेवाले, **कुवलेशयः**—जलमें शेषनागकी शय्यापर शयन करनेवाले, **गोहितः**—गोपालरूपसे गायोंका और अवतार धारण करके भार उतारकर पृथ्वीका हित करनेवाले, **गोपतिः**—पृथ्वीके और गायोंके स्वामी, **गोप्ता**—अवतार धारण करके सबके सम्मुख प्रकट होते समय अपनी मायासे अपने स्वरूपको आच्छादित करनेवाले, **वृषभाक्षः**—समस्त कामनाओंकी वर्षा करनेवाली कृपादृष्टिसे युक्त, **वृषप्रियः**—धर्मसे प्यार करनेवाले (५८६—५९५) ॥ ७६ ॥

अनिवर्ती निवृत्तात्मा संक्षेप्ता क्षेमकृच्छिवः।
श्रीवत्सवक्षाः श्रीवासः श्रीपतिः श्रीमतां वरः। ७७।

अनिवर्ती—रणभूमिमें और धर्मपालनमें पीछे न हटनेवाले, **निवृत्तात्मा**—स्वभावसे ही विषय-वासनारहित नित्य शुद्ध मनवाले, **संक्षेप्ता**—विस्तृत जगत्को क्षणभरमें संक्षिप्त यानी सूक्ष्मरूपसे करनेवाले, **क्षेमकृत्**—शरणागतकी रक्षा करनेवाले, **शिवः**—स्मरणमात्रसे पवित्र करनेवाले कल्याणस्वरूप, **श्रीवत्सवक्षाः**—श्रीवत्स नामक चिह्नको वक्षःस्थलमें धारण करनेवाले, **श्रीवासः**—श्रीलक्ष्मीजीके वासस्थान, **श्रीपतिः**—परमशक्तिरूपा श्रीलक्ष्मीजीके

स्वामी, **श्रीमतां वरः**—सब प्रकारकी सम्पत्ति और ऐश्वर्यसे युक्त ब्रह्मादि समस्त लोकपालोंसे श्रेष्ठ (५९६—६०४)॥ ७७॥

श्रीदः श्रीशः श्रीनिवासः श्रीनिधिः श्रीविभावनः।
श्रीधरः श्रीकरः श्रेयः श्रीमाँल्लोकत्रयाश्रयः।७८।

श्रीदः—भक्तोंको श्री प्रदान करनेवाले, **श्रीशः**—लक्ष्मीके नाथ, **श्रीनिवासः**—श्रीलक्ष्मीजीके अन्तःकरणमें नित्य निवास करनेवाले, **श्रीनिधिः**—समस्त श्रियोंके आधार, **श्रीविभावनः**—सब मनुष्योंके लिये उनके कर्मानुसार नाना प्रकारके ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले, **श्रीधरः**—जगज्जननी श्रीको वक्षःस्थलमें धारण करनेवाले, **श्रीकरः**—स्मरण, स्तवन और अर्चन आदि करनेवाले भक्तोंके लिये श्रीका विस्तार करनेवाले, **श्रेयः**—कल्याणस्वरूप, **श्रीमान्**—सब प्रकारकी श्रियोंसे युक्त, **लोकत्रयाश्रयः**—तीनों लोकोंके आधार (६०५—६१४)॥ ७८॥

स्वक्षः स्वङ्गः शतानन्दो नन्दिर्ज्योतिर्गणेश्वरः।
विजितात्माविधेयात्मा सत्कीर्तिश्छिन्नसंशयः।७९।

स्वक्षः—मनोहर कृपाकटाक्षसे युक्त परम सुन्दर

आँखोंवाले, **स्वङ्गः**—अतिशय कोमल परम सुन्दर मनोहर अंगोंवाले, **शतानन्दः**—लीलाभेदसे सैकड़ों विभागोंमें विभक्त आनन्दस्वरूप, **नन्दिः**—परमानन्दविग्रह, **ज्योतिर्गणेश्वरः**—नक्षत्रसमुदायोंके ईश्वर, **विजितात्मा**—जीते हुए मनवाले, **अविधेयात्मा**—जिनके असली स्वरूपका किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सके—ऐसे अनिर्वचनीयस्वरूप, **सत्कीर्तिः**—सच्ची कीर्तिवाले, **छिन्नसंशयः**—हथेलीमें रखे हुए बेरके समान सम्पूर्ण विश्वको प्रत्यक्ष देखनेवाले होनेसे सब प्रकारके संशयोंसे रहित (६१५—६२३)॥ ७९॥

उदीर्णः सर्वतश्चक्षुरनीशः शाश्वतस्थिरः।
भूशयो भूषणो भूतिर्विशोकः शोकनाशनः॥८०॥

उदीर्णः—सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ, **सर्वतश्चक्षुः**—समस्त वस्तुओंको सब दिशाओंमें सदा-सर्वदा देखनेकी शक्तिवाले, **अनीशः**—जिनका दूसरा कोई शासक न हो—ऐसे स्वतन्त्र, **शाश्वतस्थिरः**—सदा एकरस स्थिर रहनेवाले, निर्विकार, **भूशयः**—लंकागमनके लिये मार्गकी याचना करते समय समुद्रतटकी भूमिपर शयन करनेवाले, **भूषणः**—स्वेच्छासे नाना अवतार लेकर अपने चरणचिह्नोंसे

भूमिकी शोभा बढ़ानेवाले, **भूतिः**—सत्तास्वरूप और समस्त विभूतियोंके आधारस्वरूप, **विशोकः**—सब प्रकारसे शोकरहित, **शोकनाशनः**—स्मृतिमात्रसे भक्तोंके शोकका समूल नाश करनेवाले (६२४—६३२) ॥ ८० ॥

अर्चिष्मानर्चितः कुम्भो विशुद्धात्मा विशोधनः ।
अनिरुद्धोऽप्रतिरथः प्रद्युम्नोऽमितविक्रमः ।८१।

अर्चिष्मान्—चन्द्र-सूर्य आदि समस्त ज्योतियोंको देदीप्यमान करनेवाली अतिशय प्रकाशमय अनन्त किरणोंसे युक्त, **अर्चितः**—समस्त लोकोंके पूज्य ब्रह्मादिसे भी पूजे जानेवाले, **कुम्भः**—घटकी भाँति सबके निवासस्थान, **विशुद्धात्मा**—परम शुद्ध निर्मल आत्मस्वरूप, **विशोधनः**—स्मरणमात्रसे समस्त पापोंका नाश करके भक्तोंके अन्तःकरणको परम शुद्ध कर देनेवाले, **अनिरुद्धः**—जिनको कोई बाँधकर नहीं रख सके—ऐसे चतुर्व्यूहमें अनिरुद्धस्वरूप, **अप्रतिरथः**—प्रतिपक्षसे रहित, **प्रद्युम्नः**—परमश्रेष्ठ अपार धनसे युक्त चतुर्व्यूहमें प्रद्युम्नस्वरूप, **अमितविक्रमः**—अपार पराक्रमी (६३३—६४१)॥ ८१ ॥

कालनेमिनिहा वीरः शौरिः शूरजनेश्वरः ।
त्रिलोकात्मा त्रिलोकेशः केशवः केशिहा हरिः । ८२।

कालनेमिनिहा—कालनेमि नामक असुरको मारनेवाले, **वीरः**—परम शूरवीर, **शौरिः**—शूरकुलमें उत्पन्न होनेवाले श्रीकृष्णस्वरूप, **शूरजनेश्वरः**—अतिशय शूरवीरताके कारण इन्द्रादि शूरवीरोंके भी इष्ट, **त्रिलोकात्मा**—अन्तर्यामीरूपसे तीनों लोकोंके आत्मा, **त्रिलोकेशः**—तीनों लोकोंके स्वामी, **केशवः**—सूर्यकी किरणरूप केशवाले, **केशिहा**—केशी नामक असुरको मारनेवाले, **हरिः**—स्मरणमात्रसे समस्त पापोंका और समूल संसारका हरण करनेवाले (६४२—६५०) ॥ ८२ ॥

कामदेवः कामपालः कामी कान्तः कृतागमः ।
अनिर्देश्यवपुर्विष्णुर्वीरोऽनन्तो धनञ्जयः ।८३।

कामदेवः—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंको चाहनेवाले मनुष्योंद्वारा अभिलषित समस्त कामनाओंके अधिष्ठाता परमदेव, **कामपालः**—सकामी भक्तोंकी कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले, **कामी**—स्वभावसे ही पूर्ण काम और अपने प्रियतमोंको चाहनेवाले, **कान्तः**—परम मनोहर श्यामसुन्दर देह धारण करनेवाले गोपीजनवल्लभ, **कृतागमः**—समस्त

वेद और शास्त्रोंको रचनेवाले, **अनिर्देश्यवपुः**—जिसके दिव्य स्वरूपका किसी प्रकार भी वर्णन नहीं किया जा सके—ऐसे अनिर्वचनीय शरीरवाले, **विष्णुः**—शेषशायी भगवान् विष्णु, **वीरः**—बिना ही पैरोंके गमन करने आदि अनेक दिव्य शक्तियोंसे युक्त, **अनन्तः**—जिनके स्वरूप, शक्ति, ऐश्वर्य, सामर्थ्य और गुणोंका कोई भी पार नहीं पा सकता—ऐसे अविनाशी गुण, प्रभाव और शक्तियोंसे युक्त, **धनञ्जयः**—अर्जुनरूपसे दिग्विजयके समय बहुत-सा धन जीतकर लानेवाले (६५१—६६०) ॥ ८३ ॥

ब्रह्मण्यो ब्रह्मकृद् ब्रह्मा ब्रह्म ब्रह्मविवर्धनः ।
ब्रह्मविद् ब्राह्मणो ब्रह्मी ब्रह्मज्ञो ब्राह्मणप्रियः । ८४ ।

ब्रह्मण्यः—तप, वेद, ब्राह्मण और ज्ञानकी रक्षा करनेवाले, **ब्रह्मकृत्**—पूर्वोक्त तप आदिकी रचनावाले, **ब्रह्मा**—ब्रह्मारूपसे जगत्को उत्पन्न करनेवाले, **ब्रह्म**—सच्चिदानन्दस्वरूप, **ब्रह्मविवर्धनः**—पूर्वोक्त ब्रह्मशब्दवाची तप आदिकी वृद्धि करनेवाले, **ब्रह्मवित्**—वेद और वेदार्थको पूर्णतया जाननेवाले, **ब्राह्मणः**—समस्त वस्तुओंको ब्रह्मरूपसे देखनेवाले, **ब्रह्मी**—

ब्रह्मशब्दवाची तपादि समस्त पदार्थोंके अधिष्ठान, **ब्रह्मज्ञः**—अपने आत्मस्वरूप ब्रह्मशब्दवाची वेदको पूर्णतया यथार्थ जाननेवाले, **ब्राह्मणप्रियः**—ब्राह्मणोंके परम प्रिय और ब्राह्मणोंको अतिशय प्रिय माननेवाले (६६१—६७०) ॥ ८४ ॥

महाक्रमो महाकर्मा महातेजा महोरगः ।
महाक्रतुर्महायज्वा महायज्ञो महाहविः ।८५।

महाक्रमः—बड़े वेगसे चलनेवाले, **महाकर्मा**—भिन्न-भिन्न अवतारोंमें नाना प्रकारके महान् कर्म करनेवाले, **महातेजाः**—जिसके तेजसे समस्त तेजस्वी देदीप्यमान होते हैं—ऐसे महान् तेजस्वी, **महोरगः**—बड़े भारी सर्प यानी वासुकिस्वरूप, **महाक्रतुः**—महान् यज्ञस्वरूप, **महायज्वा**—बड़े यजमान यानी लोकसंग्रहके लिये बड़े-बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करनेवाले, **महायज्ञः**—जपयज्ञ आदि भगवत्प्राप्तिके साधनरूप, समस्त यज्ञ जिनकी विभूतियाँ हैं—ऐसे महान् यज्ञस्वरूप, **महाहविः**—ब्रह्मरूप अग्निमें हवन किये जानेयोग्य प्रपंचरूप हवि जिनका स्वरूप है—ऐसे महान् हविःस्वरूप (६७१—६७८) ॥ ८५ ॥

स्तव्यः स्तवप्रियः स्तोत्रं स्तुतिः स्तोता रणप्रियः।
पूर्णः पूरयिता पुण्यः पुण्यकीर्तिरनामयः।८६।

स्तव्यः—सबके द्वारा स्तुति किये जानेयोग्य, **स्तवप्रियः**—स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले, **स्तोत्रम्**—जिनके द्वारा भगवान्‌के गुण-प्रभावका कीर्तन किया जाता है, वह स्तोत्र, **स्तुतिः**—स्तवनक्रियास्वरूप, **स्तोता**—स्तुति करनेवाले, **रणप्रियः**—युद्धमें प्रेम करनेवाले, **पूर्णः**—समस्त ज्ञान, शक्ति, ऐश्वर्य और गुणोंसे परिपूर्ण, **पूरयिता**—अपने भक्तोंको सब प्रकारसे परिपूर्ण करनेवाले, **पुण्यः**—स्मरणमात्रसे पापोंका नाश करनेवाले पुण्यस्वरूप, **पुण्यकीर्तिः**—परमपावन कीर्तिवाले, **अनामयः**—आन्तरिक और बाह्य—सब प्रकारकी व्याधियोंसे रहित (६७९—६८९)॥ ८६॥

मनोजवस्तीर्थकरो वसुरेता वसुप्रदः।
वसुप्रदो वासुदेवो वसुर्वसुमना हविः।८७।

मनोजवः—मनकी भाँति वेगवाले, **तीर्थकरः**—समस्त विद्याओंके रचयिता और उपदेशकर्ता, **वसुरेताः**—हिरण्यमय पुरुष (प्रथम पुरुष-सृष्टिका बीज) जिनका वीर्य है—ऐसे सुवर्णवीर्य, **वसुप्रदः**—प्रचुर धन प्रदान

करनेवाले, **वसुप्रदः**—अपने भक्तोंको मोक्षरूप महान् धन देनेवाले, **वासुदेवः**—वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण, **वसुः**—सबके अन्तःकरणमें निवास करनेवाले, **वसुमनाः**—समानभावसे सबमें निवास करनेकी शक्तिसे युक्त मनवाले, **हविः**—यज्ञमें हवन किये जानेयोग्य हविःस्वरूप (६९०—६९८) ॥ ८७ ॥

सद्गतिः सत्कृतिः सत्ता सद्भूतिः सत्परायणः।
शूरसेनो यदुश्रेष्ठः सन्निवासः सुयामुनः।८८।

सद्गतिः—सत्पुरुषोंद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य गतिस्वरूप, **सत्कृतिः**—जगत्की रक्षा आदि सत्कार्य करनेवाले, **सत्ता**—सदा-सर्वदा विद्यमान सत्तास्वरूप, **सद्भूतिः**—बहुत प्रकारसे बहुत रूपोंमें भासित होनेवाले, **सत्परायणः**—सत्पुरुषोंके परम प्रापणीय स्थान, **शूरसेनः**—हनुमानादि श्रेष्ठ शूरवीर योद्धाओंसे युक्त सेनावाले, **यदुश्रेष्ठः**—यदुवंशियोंमें सर्वश्रेष्ठ, **सन्निवासः**—सत्पुरुषोंके आश्रय, **सुयामुनः**—जिनके परिकर यमुना-तटनिवासी गोपालबाल आदि अति सुन्दर हैं, ऐसे श्रीकृष्ण (६९९—७०७) ॥ ८८ ॥

भूतावासो वासुदेवः सर्वासुनिलयोऽनलः।
दर्पहा दर्पदो दृप्तो दुर्धरोऽथापराजितः।८९।

भूतावासः—समस्त प्राणियोंके मुख्य निवासस्थान, **वासुदेवः**—अपनी मायासे जगत्‌को आच्छादित करनेवाले परमदेव, **सर्वासुनिलयः**—समस्त प्राणियोंके आधार, **अनलः**—अपार शक्ति और सम्पत्तिसे युक्त, **दर्पहा**—धर्मविरुद्ध मार्गमें चलनेवालोंके घमण्डको नष्ट करनेवाले, **दर्पदः**—अपने भक्तोंको विशुद्ध गौरव देनेवाले, **दृप्तः**—नित्यानन्दमग्न, **दुर्धरः**—बड़ी कठिनतासे हृदयमें धारित होनेवाले, **अपराजितः**—दूसरोंसे अजित अर्थात् भक्तपरवश (७०८—७१६) ॥ ८९ ॥

विश्वमूर्तिर्महामूर्तिर्दीप्तमूर्तिरमूर्तिमान् ।
अनेकमूर्तिरव्यक्तः शतमूर्तिः शताननः ॥ ९० ॥

विश्वमूर्तिः—समस्त विश्व ही जिनकी मूर्ति है—ऐसे विराट्स्वरूप, **महामूर्तिः**—बड़े रूपवाले, **दीप्तमूर्तिः**—स्वेच्छासे धारण किये हुए देदीप्यमान स्वरूपसे युक्त, **अमूर्तिमान्**—जिनकी कोई मूर्ति नहीं—ऐसे निराकार, **अनेकमूर्तिः**—नाना अवतारोंमें स्वेच्छासे लोगोंका उपकार करनेके लिये बहुत मूर्तियोंको धारण करनेवाले, **अव्यक्तः**—अनेक मूर्ति होते हुए भी जिनका स्वरूप किसी प्रकार व्यक्त न किया जा सके—ऐसे

अप्रकटस्वरूप, **शतमूर्तिः**—सैकड़ों मूर्तियोंवाले, **शताननः**—सैकड़ों मुखवाले (७१७—७२४) ॥ ९० ॥

एको नैकः सवः कः किं यत्तत्पदमनुत्तमम्।
लोकबन्धुर्लोकनाथो माधवो भक्तवत्सलः। ९१।

एकः—सब प्रकारके भेद-भावोंसे रहित अद्वितीय, **नैकः**—उपाधिभेदसे अनेक, **सवः**—जिनमें सोमनामकी ओषधिका रस निकाला जाता है—ऐसे यज्ञस्वरूप, **कः**—सुखस्वरूप, **किम्**—विचारणीय ब्रह्मस्वरूप, **यत्**—स्वतःसिद्ध, **तत्**—विस्तार करनेवाले, **पदमनुत्तमम्**—मुमुक्षु पुरुषोंद्वारा प्राप्त किये जानेयोग्य अत्युत्तम परमपद, **लोकबन्धुः**—समस्त प्राणियोंके हित करनेवाले परम मित्र, **लोकनाथः**—सबके द्वारा याचना किये जानेयोग्य लोकस्वामी, **माधवः**—मधुकुलमें उत्पन्न होनेवाले, **भक्तवत्सलः**—भक्तोंसे प्रेम करनेवाले (७२५—७३६) ॥ ९१ ॥

सुवर्णवर्णो हेमाङ्गो वराङ्गश्चन्दनाङ्गदी।
वीरहा विषमः शून्यो घृताशीरचलश्चलः। ९२।

सुवर्णवर्णः—सोनेके समान पीतवर्णवाले, **हेमाङ्गः**—सोनेके समान सुडौल चमकीले अंगोंवाले, **वराङ्गः**—

परम श्रेष्ठ अंग-प्रत्यंगोंवाले, **चन्दनाङ्गदी**—चन्दनके लेप और बाजूबंदसे सुशोभित, **वीरहा**—राग-द्वेष आदि प्रबल शत्रुओंसे डरकर शरणमें आनेवालोंके अन्तःकरणमें उनका अभाव कर देनेवाले, **विषमः**—जिनके समान दूसरा कोई नहीं—ऐसे अनुपम, **शून्यः**—समस्त विशेषणोंसे रहित, **घृताशीः**—अपने आश्रितजनोंके लिये कृपासे सने हुए द्रवित संकल्प करनेवाले, **अचलः**—किसी प्रकार भी विचलित न होनेवाले—अविचल, **चलः**—वायुरूपसे सर्वत्र गमन करनेवाले (७३७—७४६) ॥ ९२ ॥

अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी त्रिलोकधृक्।
सुमेधा मेधजो धन्यः सत्यमेधा धराधरः। ९३।

अमानी—स्वयं मान न चाहनेवाले, अभिमानरहित, **मानदः**—दूसरोंको मान देनेवाले, **मान्यः**—सबके पूजनेयोग्य माननीय, **लोकस्वामी**—चौदह भुवनोंके स्वामी, **त्रिलोकधृक्**—तीनों लोकोंको धारण करनेवाले, **सुमेधाः**—अति उत्तम सुन्दर बुद्धिवाले, **मेधजः**— यज्ञमें प्रकट होनेवाले, **धन्यः**—नित्य कृतकृत्य होनेके कारण सर्वथा धन्यवादके पात्र, **सत्यमेधाः**—सच्ची और श्रेष्ठ

बुद्धिवाले, **धराधरः**—अनन्तभगवान्‌के रूपसे पृथ्वीको धारण करनेवाले (७४७—७५६) ॥ ९३ ॥

तेजोवृषो द्युतिधरः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
प्रग्रहो निग्रहो व्यग्रो नैकशृङ्गो गदाग्रजः ।९४ ।

तेजोवृषः—आदित्यरूपसे तेजकी वर्षा करनेवाले और भक्तोंपर अपने अमृतमय तेजकी वर्षा करनेवाले, **द्युतिधरः**—परम कान्तिको धारण करनेवाले, **सर्वशस्त्रभृतां वरः**—समस्त शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, **प्रग्रहः**—भक्तोंके द्वारा अर्पित पत्र-पुष्पादिको ग्रहण करनेवाले, **निग्रहः**—सबका निग्रह करनेवाले, **व्यग्रः**—अपने भक्तोंको अभीष्ट फल देनेमें लगे हुए, **नैकशृङ्गः**—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपातरूप चार सींगोंको धारण करनेवाले शब्दब्रह्मस्वरूप, **गदाग्रजः**—गदसे पहले जन्म लेनेवाले (७५७—७६४) ॥ ९४ ॥

चतुर्मूर्तिश्चतुर्बाहुश्चतुर्व्यूहश्चतुर्गतिः ।
चतुरात्मा चतुर्भावश्चतुर्वेदविदेकपात् ।९५ ।

चतुर्मूर्तिः—राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्नरूप चार मूर्तियोंवाले, **चतुर्बाहुः**—चार भुजाओंवाले, **चतुर्व्यूहः**—वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध—इन चार व्यूहोंसे युक्त, **चतुर्गतिः**—सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य,

सायुज्यरूप चार परम गतिस्वरूप, **चतुरात्मा**—मन, बुद्धि, अहंकार और चित्तरूप चार अन्तःकरणवाले, **चतुर्भाव:**—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों पुरुषार्थोंके उत्पत्तिस्थान, **चतुर्वेदवित्**—चारों वेदोंके अर्थको भलीभाँति जाननेवाले, **एकपात्**—एक पादवाले यानी एक पाद (अंश)-से समस्त विश्वको व्याप्त करनेवाले (७६५—७७२) ॥ ९५ ॥

समावर्तोऽनिवृत्तात्मा दुर्जयो दुरतिक्रमः।
दुर्लभो दुर्गमो दुर्गो दुरावासो दुरारिहा। ९६।

समावर्तः—संसारचक्रको भलीभाँति घुमानेवाले, **अनिवृत्तात्मा**—सर्वत्र विद्यमान होनेके कारण जिनका आत्मा कहींसे भी (हटा हुआ) नहीं है, ऐसे, **दुर्जयः**—किसीसे भी जीतनेमें न आनेवाले, **दुरतिक्रमः**—जिनकी आज्ञाका कोई उल्लंघन नहीं कर सके ऐसे, **दुर्लभः**—बिना भक्तिके प्राप्त न होनेवाले, **दुर्गमः**—कठिनतासे जाननेमें आनेवाले, **दुर्गः**—कठिनतासे प्राप्त होनेवाले, **दुरावासः**—बड़ी कठिनतासे योगिजनोंद्वारा हृदयमें बसाये जानेवाले, **दुरारिहा**—दुष्ट मार्गमें चलनेवाले दैत्योंका वध करनेवाले (७७३—७८१)॥ ९६॥

शुभाङ्गो लोकसारङ्गः सुतन्तुस्तन्तुवर्धनः।
इन्द्रकर्मा महाकर्मा कृतकर्मा कृतागमः।१७।

शुभाङ्गः—कल्याणकारक सम्बोधन [नाम]-वाले, **लोकसारङ्गः**—लोकोंके सारको ग्रहण करनेवाले, **सुतन्तुः**—सुन्दर विस्तृत जगद्रूप तन्तुवाले, **तन्तुवर्धनः**—पूर्वोक्त जगत्-तन्तुको बढ़ानेवाले, **इन्द्रकर्मा**—इन्द्रके समान कर्मवाले, **महाकर्मा**—बड़े-बड़े कर्म करनेवाले, **कृतकर्मा**—जो समस्त कर्तव्य कर्म कर चुके हों, जिनका कोई कर्तव्य शेष न रहा हो—ऐसे कृतकृत्य, **कृतागमः**—अपने अवतारयोनिके अनुरूप अनेक कार्योंको पूर्ण करनेके लिये अवतार धारण करके आनेवाले (७८२—७८९) ॥ १७ ॥

उद्भवः सुन्दरः सुन्दो रत्ननाभः सुलोचनः।
अर्को वाजसनः शृङ्गी जयन्तः सर्वविज्जयी।१८।

उद्भवः—स्वेच्छासे श्रेष्ठ जन्म धारण करनेवाले, **सुन्दरः**—सबसे अधिक भाग्यशाली होनेके कारण परम सुन्दर, **सुन्दः**—परम करुणाशील, **रत्ननाभः**—रत्नके समान सुन्दर नाभिवाले, **सुलोचनः**—सुन्दर नेत्रोंवाले, **अर्कः**—ब्रह्मादि पूज्य पुरुषोंके भी पूजनीय, **वाजसनः**—याचकोंको अन्न प्रदान करनेवाले, **शृङ्गी**—प्रलयकालमें

सींगयुक्त मत्स्यविशेषका रूप धारण करनेवाले, **जयन्तः**—शत्रुओंको पूर्णतया जीतनेवाले, **सर्वविज्जयी**—सर्वज्ञ यानी सब कुछ जाननेवाले और सबको जीतनेवाले (७९०—७९९) ॥ ९८ ॥

सुवर्णबिन्दुरक्षोभ्यः सर्ववागीश्वरेश्वरः।
महाह्रदो महागर्तो महाभूतो महानिधिः।९९।

सुवर्णबिन्दुः—सुन्दर अक्षर और बिन्दुसे युक्त ओंकारस्वरूप नाम ब्रह्म, **अक्षोभ्यः**—किसीके द्वारा भी क्षुभित न किये जा सकनेवाले, **सर्ववागीश्वरेश्वरः**—समस्त वाणीपतियोंके यानी ब्रह्मादिके भी स्वामी, **महाह्रदः**—ध्यान करनेवाले जिसमें गोता लगाकर आनन्दमें मग्न होते हैं, ऐसे परमानन्दके महान् सरोवर, **महागर्तः**—मायारूप महान् गर्तवाले, **महाभूतः**—त्रिकालमें कभी नष्ट न होनेवाले महाभूतस्वरूप, **महानिधिः**—सबके महान् निवासस्थान (८००—८०६) ॥ ९९ ॥

कुमुदः कुन्दरः कुन्दः पर्जन्यः पावनोऽनिलः।
अमृताशोऽमृतवपुः सर्वज्ञः सर्वतोमुखः।१००।

कुमुदः—कु अर्थात् पृथ्वीको उसका भार उतारकर प्रसन्न करनेवाले, **कुन्दरः**—हिरण्याक्षको मारनेके लिये

पृथ्वीको विदीर्ण करनेवाले, **कुन्दः**—कश्यपजीको पृथ्वी प्रदान करनेवाले, **पर्जन्यः**—बादलकी भाँति समस्त इष्ट वस्तुओंकी वर्षा करनेवाले, **पावनः**—स्मरणमात्रसे पवित्र करनेवाले, **अनिलः**—सदा प्रबुद्ध रहनेवाले, **अमृताशः**—जिनकी आशा कभी विफल न हो—ऐसे अमोघसंकल्प, **अमृतवपुः**— जिनका कलेवर कभी नष्ट न हो—ऐसे नित्यविग्रह, **सर्वज्ञः**—सदा-सर्वदा सब कुछ जाननेवाले, **सर्वतोमुखः**—सब ओर मुखवाले यानी जहाँ कहीं भी उनके भक्त भक्तिपूर्वक पत्र-पुष्पादि जो कुछ भी अर्पण करें, उसे भक्षण करनेवाले (८०७—८१६) ॥ १०० ॥

सुलभः सुव्रतः सिद्धः शत्रुजिच्छत्रुतापनः ।
न्यग्रोधोदुम्बरोऽश्वत्थश्चाणूरान्ध्रनिषूदनः । १०१ ।

सुलभः—नित्य-निरन्तर चिन्तन करनेवालेको और एकनिष्ठ श्रद्धालु भक्तको बिना ही परिश्रमके सुगमतासे प्राप्त होनेवाले, **सुव्रतः**—सुन्दर भोजन करनेवाले यानी अपने भक्तोंद्वारा प्रेमपूर्वक अर्पण किये हुए पत्र-पुष्पादि मामूली भोजनको भी परम श्रेष्ठ मानकर खानेवाले, **सिद्धः**—स्वभावसे ही समस्त सिद्धियोंसे युक्त, **शत्रुजित्**—देवता और सत्पुरुषोंके

शत्रुओंको अपने शत्रु मानकर जीतनेवाले, **शत्रुतापनः**—शत्रुओंको तपानेवाले, **न्यग्रोधः**—वटवृक्षरूप, **उदुम्बरः**—कारणरूपसे आकाशके भी ऊपर रहनेवाले, **अश्वत्थः**—पीपलवृक्षस्वरूप, **चाणूरान्ध्रनिषूदनः**—चाणूर नामक अन्ध्रजातिके वीर मल्लको मारनेवाले (८१७—८२५) ॥ १०१ ॥

सहस्त्रार्चिः सप्तजिह्वः सप्तैधाः सप्तवाहनः।
अमूर्तिरनघोऽचिन्त्यो भयकृद्भयनाशनः। १०२।

सहस्त्रार्चिः—अनन्त किरणोंवाले, **सप्तजिह्वः**—काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, धूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरुचि—इन सात जिह्वावाले अग्निस्वरूप, **सप्तैधाः**—सात दीप्तिवाले अग्निस्वरूप, **सप्तवाहनः**—सात घोड़ोंवाले सूर्यरूप, **अमूर्तिः**—मूर्तिरहित निराकार, **अनघः**—सब प्रकारसे निष्पाप, **अचिन्त्यः**—किसी प्रकार भी चिन्तन करनेमें न आनेवाले, **भयकृत्**—दुष्टोंको भयभीत करनेवाले, **भयनाशनः**—स्मरण करनेवालोंके और सत्पुरुषोंके भयका नाश करनेवाले (८२६—८३४) ॥ १०२ ॥

अणुर्बृहत्कृशः स्थूलो गुणभृन्निर्गुणो महान्।
अधृतः स्वधृतः स्वास्यः प्राग्वंशो वंशवर्द्धनः। १०३।

अणुः—अत्यन्त सूक्ष्म, **बृहत्**—सबसे बड़े, **कृशः**—अत्यन्त पतले और हलके, **स्थूलः**—अत्यन्त मोटे और भारी, **गुणभृत्**—समस्त गुणोंको धारण करनेवाले, **निर्गुणः**—सत्त्व, रज और तम—इन तीनों गुणोंसे रहित, **महान्**—गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और ज्ञान आदिकी अतिशयताके कारण परम महत्त्वसम्पन्न, **अधृतः**—जिनको कोई भी धारण नहीं कर सकता—ऐसे निराधार, **स्वधृतः**—अपने-आपसे धारित यानी अपनी ही महिमामें स्थित, **स्वास्यः**—सुन्दर मुखवाले, **प्राग्वंशः**—जिनसे समस्त वंशपरम्परा आरम्भ हुई है—ऐसे समस्त पूर्वजोंके भी पूर्वज आदिपुरुष, **वंशवर्द्धनः**—जगत्-प्रपंचरूप वंशको और यादव-वंशको बढ़ानेवाले (८३५—८४६) ॥ १०३ ॥

भारभृत्कथितो योगी योगीशः सर्वकामदः।
आश्रमः श्रमणः क्षामः सुपर्णो वायुवाहनः। १०४।

भारभृत्—शेषनाग आदिके रूपमें पृथ्वीका भार उठानेवाले और अपने भक्तोंके योगक्षेमरूप भारको वहन करनेवाले, **कथितः**—वेद-शास्त्र और महापुरुषोंद्वारा जिनके गुण, प्रभाव, ऐश्वर्य और स्वरूपका बारंबार कथन किया गया है, ऐसे सबके द्वारा वर्णित, **योगी**—

नित्य समाधियुक्त, **योगीशः**—समस्त योगियोंके स्वामी, **सर्वकामदः**—समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले, **आश्रमः**—सबको विश्राम देनेवाले, **श्रमणः**—दुष्टोंको संतप्त करनेवाले, **क्षामः**—प्रलयकालमें सब प्रजाका क्षय करनेवाले, **सुपर्णः**—वेदरूप सुन्दर पत्तोंवाले (संसारवृक्षस्वरूप), **वायुवाहनः**—वायुको गमन करनेके लिये शक्ति देनेवाले (८४७—८५६) ॥ १०४ ॥

धनुर्धरो धनुर्वेदो दण्डो दमयिता दमः।
अपराजितः सर्वसहो नियन्तानियमोऽयमः। १०५।

धनुर्धरः—धनुषधारी श्रीराम, **धनुर्वेदः**—धनुर्विद्याको जाननेवाले श्रीराम, **दण्डः**—दमन करनेवालोंकी दमनशक्ति, **दमयिता**—यम और राजा आदिके रूपमें दमन करनेवाले, **दमः**—दण्डका कार्य यानी जिनको दण्ड दिया जाता है, उनका सुधार, **अपराजितः**—शत्रुओंद्वारा पराजित न होनेवाले, **सर्वसहः**—सब कुछ सहन करनेकी सामर्थ्यसे युक्त, अतिशय तितिक्षु, **नियन्ता**—सबको अपने-अपने कर्तव्यमें नियुक्त करनेवाले, **अनियमः**—नियमोंसे न बँधे हुए, जिनका कोई भी नियन्त्रण करनेवाला नहीं, ऐसे परम स्वतन्त्र, **अयमः**—जिनका कोई शासक नहीं अथवा मृत्युरहित (८५७—८६६) ॥ १०५ ॥

सत्त्ववान् सात्त्विकः सत्यः सत्यधर्मपरायणः।
अभिप्रायः प्रियार्होऽर्हः प्रियकृत्प्रीतिवर्धनः। १०६।

सत्त्ववान्—बल, वीर्य, सामर्थ्य आदि समस्त सत्त्वोंसे सम्पन्न, **सात्त्विकः**—सत्त्वगुण-प्रधान विग्रह, **सत्यः**—सत्य-भाषणस्वरूप, **सत्यधर्मपरायणः**—यथार्थ भाषण और धर्मके परम आधार, **अभिप्रायः**—प्रेमीजन जिनको चाहते हैं—ऐसे परम इष्ट, **प्रियार्हः**—अत्यन्त प्रिय वस्तु समर्पण करनेके लिये योग्य पात्र, **अर्हः**—सबके परम पूज्य; **प्रियकृत्**—भजनेवालोंका प्रिय करनेवाले, **प्रीतिवर्धनः**—अपने प्रेमियोंके प्रेमको बढ़ानेवाले (८६७—८७५) ॥ १०६ ॥

विहायसगतिर्ज्योतिः सुरुचिर्हुतभुग्विभुः।
रविर्विरोचनः सूर्यः सविता रविलोचनः। १०७।

विहायसगतिः—आकाशमें गमन करनेवाले, **ज्योतिः**—स्वयंप्रकाशस्वरूप, **सुरुचिः**—सुन्दर रुचि और कान्तिवाले, **हुतभुक्**—यज्ञमें हवन की हुई समस्त हविको अग्निरूपसे भक्षण करनेवाले, **विभुः**—सर्वव्यापी, **रविः**—समस्त रसोंका शोषण करनेवाले सूर्य, **विरोचनः**—विविध प्रकारसे प्रकाश फैलानेवाले, **सूर्यः**—शोभाको प्रकट करनेवाले, **सविता**—समस्त

जगत्को प्रसव यानी उत्पन्न करनेवाले, **रविलोचनः**— सूर्यरूप नेत्रोंवाले (८७६—८८५) ॥ १०७ ॥

अनन्तो हुतभुग्भोक्ता सुखदो नैकजोऽग्रजः ।
अनिर्विण्णः सदामर्षी लोकाधिष्ठानमद्भुतः । १०८ ।

अनन्तः—सब प्रकारसे अन्तरहित, **हुतभुक्**— यज्ञमें हवन की हुई सामग्रीको उन-उन देवताओंके रूपमें भक्षण करनेवाले, **भोक्ता**—प्रकृतिको भोगनेवाले, **सुखदः**—भक्तोंको दर्शनरूप परम सुख देनेवाले, **नैकजः**—धर्मरक्षा, साधुरक्षा आदि परम विशुद्ध हेतुओंसे स्वेच्छापूर्वक अनेक जन्म धारण करनेवाले, **अग्रजः**—सबसे पहले जन्मनेवाले आदिपुरुष, **अनिर्विण्णः**—पूर्णकाम होनेके कारण विरक्तिसे रहित, **सदामर्षी**—सत्पुरुषोंपर क्षमा करनेवाले, **लोकाधिष्ठानम्**—समस्त लोकोंके आधार, **अद्भुतः**— अत्यन्त आश्चर्यमय (८८६—८९५) ॥ १०८ ॥

सनात्सनातनतमः कपिलः कपिरप्ययः ।
स्वस्तिदः स्वस्तिकृत्स्वस्ति स्वस्तिभुक्स्वस्तिदक्षिणः । १०९ ।

सनात्—अनन्तकालस्वरूप, **सनातनतमः**—सबके कारण होनेसे ब्रह्मादि पुरुषोंकी अपेक्षा भी परम पुराणपुरुष, **कपिलः**—महर्षि कपिल, **कपिः**—सूर्यदेव,

अव्ययः—सम्पूर्ण जगत्के लयस्थान, **स्वस्तिदः**—परमानन्दरूप मंगल देनेवाले, **स्वस्तिकृत्**—आश्रितजनोंका कल्याण करनेवाले, **स्वस्ति**—कल्याणस्वरूप, **स्वस्तिभुक्**—भक्तोंके परम कल्याणकी रक्षा करनेवाले, **स्वस्तिदक्षिणः**—कल्याण करनेमें समर्थ और शीघ्र कल्याण करनेवाले (८९६—९०५) ॥ १०९ ॥

अरौद्रः कुण्डली चक्री विक्रम्यूर्जितशासनः।
शब्दातिगः शब्दसहः शिशिरः शर्वरीकरः।११०।

अरौद्रः—सब प्रकारके रुद्र (क्रूर)-भावोंसे रहित शान्तमूर्ति, **कुण्डली**—सूर्यके समान प्रकाशमान मकराकृत कुण्डलोंको धारण करनेवाले, **चक्री**—सुदर्शनचक्रको धारण करनेवाले, **विक्रमी**—सबसे विलक्षण पराक्रमशील, **ऊर्जितशासनः**—जिनका श्रुति-स्मृतिरूप शासन अत्यन्त श्रेष्ठ है—ऐसे अतिश्रेष्ठ शासन करनेवाले, **शब्दातिगः**—शब्दकी जहाँ पहुँच नहीं, ऐसे वाणीके अविषय, **शब्दसहः**—समस्त वेदशास्त्र जिनकी महिमाका बखान करते हैं,ऐसे, **शिशिरः**—त्रितापपीड़ितोंको शान्ति देनेवाले शीतलमूर्ति, **शर्वरीकरः**—ज्ञानियोंकी रात्रि संसार और अज्ञानियोंकी रात्रि ज्ञान—इन दोनोंको उत्पन्न करनेवाले (९०६—९१४) ॥ ११० ॥

अक्रूरः पेशलो दक्षो दक्षिणः क्षमिणां वरः।
विद्वत्तमो वीतभयः पुण्यश्रवणकीर्तनः। १११।

अक्रूरः—सब प्रकारके क्रूरभावोंसे रहित, **पेशलः**—मन, वाणी और कर्म—सभी दृष्टियोंसे सुन्दर होनेके कारण परम सुन्दर, **दक्षः**—सब प्रकारसे समृद्ध, परमशक्तिशाली और क्षणमात्रमें बड़े-से-बड़ा कार्य कर देनेवाले महान् कार्यकुशल, **दक्षिणः**—संहारकारी, **क्षमिणां वरः**—क्षमा करनेवालोंमें सर्वश्रेष्ठ, **विद्वत्तमः**—विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ परम विद्वान्, **वीतभयः**—सब प्रकारके भयसे रहित, **पुण्यश्रवणकीर्तनः**—जिनके नाम, गुण, महिमा और स्वरूपका श्रवण और कीर्तन परम पुण्य यानी परमपावन है, ऐसे (९१५—९२२)॥ १११॥

उत्तारणो दुष्कृतिहा पुण्यो दुःस्वप्ननाशनः।
वीरहा रक्षणः सन्तो जीवनः पर्यवस्थितः। ११२।

उत्तारणः—संसार-सागरसे पार करनेवाले, **दुष्कृतिहा**—पापोंका और पापियोंका नाश करनेवाले, **पुण्यः**—स्मरण आदि करनेवाले समस्त पुरुषोंको पवित्र कर देनेवाले, **दुःस्वप्ननाशनः**—ध्यान, स्मरण, कीर्तन और पूजन करनेसे बुरे स्वप्नोंका और संसाररूप

दुःस्वप्नका नाश करनेवाले, **वीरहा**—शरणागतोंकी विविध गतियोंका यानी संसारचक्रका नाश करनेवाले, **रक्षणः**—सब प्रकारसे रक्षा करनेवाले, **सन्तः**—विद्या और विनयका प्रचार करनेके लिये संतोंके रूपमें प्रकट होनेवाले, **जीवनः**—समस्त प्रजाको प्राणरूपसे जीवित रखनेवाले, **पर्यवस्थितः**—समस्त विश्वको व्याप्त करके स्थित रहनेवाले (९२३—९३१) ॥ ११२ ॥

अनन्तरूपोऽनन्तश्रीर्जितमन्युर्भयापहः ।
चतुरस्रो गभीरात्मा विदिशो व्यादिशो दिशः ॥ ११३ ॥

अनन्तरूपः—अनन्त—अमितरूपवाले, **अनन्तश्रीः**—अनन्तश्री यानी अपरिमित पराशक्तियोंसे युक्त, **जितमन्युः**—सब प्रकारसे क्रोधको जीत लेनेवाले, **भयापहः**—भक्तभयहारी, **चतुरस्रः**—चार वेदरूप कोणोंवाले मंगलमूर्ति और न्यायशील, **गभीरात्मा**—गम्भीर मनवाले, **विदिशः**—अधिकारियोंको उनके कर्मानुसार विभागपूर्वक नाना प्रकारके फल देनेवाले, **व्यादिशः**—सबको यथायोग्य विविध आज्ञा देनेवाले, **दिशः**—वेदरूपसे समस्त कर्मोंका फल बतलानेवाले (९३२—९४०) ॥ ११३ ॥

अनादिर्भूर्भुवो लक्ष्मीः सुवीरो रुचिराङ्गदः।
जननो जनजन्मादिर्भीमो भीमपराक्रमः। ११४।

अनादिः—जिसका आदि कोई न हो ऐसे सबके कारणस्वरूप, **भूर्भुवः**—पृथ्वीके भी आधार, **लक्ष्मीः**—समस्त शोभायमान वस्तुओंकी शोभा, **सुवीरः**—आश्रित-जनोंके अन्तःकरणमें सुन्दर कल्याणमयी विविध स्फुरणा करनेवाले, **रुचिराङ्गदः**—परम रुचिकर कल्याणमय बाजूबन्दोंको धारण करनेवाले, **जननः**—प्राणिमात्रको उत्पन्न करनेवाले, **जनजन्मादिः**—जन्म लेनेवालोंके जन्मके मूल कारण, **भीमः**—सबको भय देनेवाले, **भीमपराक्रमः**—अतिशय भय उत्पन्न करनेवाले, पराक्रमसे युक्त (९४१—९४९) ॥ ११४ ॥

आधारनिलयोऽधाता पुष्पहासः प्रजागरः।
ऊर्ध्वगः सत्पथाचारः प्राणदः प्रणवः पणः। ११५।

आधारनिलयः—आधारस्वरूप पृथ्वी आदि समस्त भूतोंके स्थान, **अधाता**—जिसका कोई भी बनानेवाला न हो ऐसे स्वयं स्थित, **पुष्पहासः**—पुष्पकी भाँति विकसित हास्यवाले, **प्रजागरः**—भली प्रकार जाग्रत् रहनेवाले नित्यप्रबुद्ध, **ऊर्ध्वगः**—सबसे ऊपर रहनेवाले, **सत्पथाचारः**—सत्पुरुषोंके मार्गका आचरण करनेवाले

मर्यादापुरुषोत्तम, **प्राणदः**—परीक्षित् आदि मरे हुएको भी जीवन देनेवाले, **प्रणवः**—ॐकारस्वरूप, **पणः**—यथायोग्य व्यवहार करनेवाले (९५०—९५८) ॥ ११५ ॥

प्रमाणं प्राणनिलयः प्राणभृत्प्राणजीवनः ।
तत्त्वं तत्त्वविदेकात्मा जन्ममृत्युजरातिगः ॥ ११६ ॥

प्रमाणम्—स्वतःसिद्ध होनेसे स्वयं प्रमाणस्वरूप, **प्राणनिलयः**—प्राणोंके आधारभूत, **प्राणभृत्**—समस्त प्राणोंका पोषण करनेवाले, **प्राणजीवनः**—प्राणवायुके संचारसे प्राणियोंको जीवित रखनेवाले, **तत्त्वम्**—यथार्थ तत्त्वरूप, **तत्त्ववित्**—यथार्थ तत्त्वको पूर्णतया जाननेवाले, **एकात्मा**—अद्वितीयस्वरूप, **जन्ममृत्युजरातिगः**—जन्म, मृत्यु और बुढ़ापा आदि शरीरके धर्मोंसे सर्वथा अतीत (९५९—९६६) ॥ ११६ ॥

भूर्भुवःस्वस्तरुस्तारः सविता प्रपितामहः ।
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा यज्ञाङ्गो यज्ञवाहनः ॥ ११७ ॥

भूर्भुवःस्वस्तरुः—भूः, भुवः, स्वःरूप तीनों लोकोंको व्याप्त करनेवाले और संसारवृक्षस्वरूप, **तारः**—संसार-सागरसे पार उतारनेवाले, **सविता**—सबको उत्पन्न करनेवाले पितामह, **प्रपितामहः**—पितामह ब्रह्माके भी पिता, **यज्ञः**—यज्ञस्वरूप, **यज्ञपतिः**—समस्त यज्ञोंके अधिष्ठाता,

यज्वा—यजमानरूपसे यज्ञ करनेवाले, **यज्ञाङ्गः**—समस्त यज्ञरूप अंगोंवाले, **यज्ञवाहनः**—यज्ञोंको चलानेवाले (९६७—९७५) ॥ ११७॥

यज्ञभृद्यज्ञकृद्यज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः।
यज्ञान्तकृद्यज्ञगुह्यमन्नमन्नाद एव च।११८।

यज्ञभृत्—यज्ञोंका धारण-पोषण करनेवाले, **यज्ञकृत्**—यज्ञोंके रचयिता, **यज्ञी**—समस्त यज्ञ जिसमें समाप्त होते हैं—ऐसे यज्ञशेषी, **यज्ञभुक्**—समस्त यज्ञोंके भोक्ता, **यज्ञसाधनः**—ब्रह्मयज्ञ, जपयज्ञ आदि बहुत-से यज्ञ जिनकी प्राप्तिके साधन हैं, ऐसे, **यज्ञान्तकृत्**—यज्ञोंका अन्त करनेवाले यानी उनका फल देनेवाले, **यज्ञगुह्यम्**—यज्ञोंमें गुप्त ज्ञानस्वरूप और निष्काम यज्ञस्वरूप, **अन्नम्**—समस्त प्राणियोंके अन्न यानी अन्नकी भाँति उनकी सब प्रकारसे तुष्टि-पुष्टि करनेवाले तथा **अन्नादः**—समस्त अन्नोंके भोक्ता (९७६—९८४) ॥ ११८॥

आत्मयोनिः स्वयंजातो वैखानः सामगायनः।
देवकीनन्दनः स्त्रष्टा क्षितीशः पापनाशनः।११९।

आत्मयोनिः—जिनका कारण दूसरा कोई नहीं—

ऐसे स्वयं योनिस्वरूप, **स्वयंजातः**—स्वयं अपने-आप स्वेच्छापूर्वक प्रकट होनेवाले, **वैखानः**—पातालवासी हिरण्याक्षका वध करनेके लिये पृथ्वीको खोदनेवाले, **सामगायनः**—सामवेदका गान करनेवाले, **देवकीनन्दनः**—देवकीपुत्र, **स्रष्टा**—समस्त लोकोंके रचयिता, **क्षितीशः**—पृथ्वीपति, **पापनाशनः**—स्मरण, कीर्तन, पूजन और ध्यान आदि करनेसे समस्त पाप-समुदायका नाश करनेवाले (९८५—९९२) ॥ ११९ ॥

शङ्खभृन्नन्दकी चक्री शार्ङ्गधन्वा गदाधरः।
रथाङ्गपाणिरक्षोभ्यः सर्वप्रहरणायुधः। १२०।

शङ्खभृत्—पांचजन्यशंखको धारण करनेवाले, **नन्दकी**—नन्दक नामक खड्ग धारण करनेवाले, **चक्री**—संसारचक्रको चलानेवाले, **शार्ङ्गधन्वा**—शार्ङ्गधनुषधारी, **गदाधरः**—कौमोदकी नामकी गदा धारण करनेवाले, **रथाङ्गपाणिः**—भीष्मकी प्रतिज्ञा रखनेके लिये सुदर्शनचक्रको हाथमें धारण करनेवाले, **अक्षोभ्यः**—जो किसी प्रकार भी विचलित नहीं किये जा सके, ऐसे, **सर्वप्रहरणायुधः**—ज्ञात और अज्ञात जितने भी युद्धभूमिमें काम करनेवाले हथियार हैं, उन

सबको धारण करनेवाले (९९३—१०००)॥ १२०॥

॥ सर्वप्रहरणायुध ॐ नम इति॥

यहाँ हजार नामोंकी समाप्ति दिखलानेके लिये अन्तिम नामको दुबारा लिखा गया है। मंगलवाची होनेसे ॐकारका स्मरण किया गया है। अन्तमें नमस्कार करके भगवान्‌की पूजा की गयी है।

इतीदं कीर्तनीयस्य केशवस्य महात्मनः।
नाम्नां सहस्रं दिव्यानामशेषेण प्रकीर्तितम्॥ १२१॥

इस प्रकार यह कीर्तन करनेयोग्य महात्मा केशवके दिव्य एक हजार नामोंका पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया॥ १२१॥

य इदं शृणुयान्नित्यं यश्चापि परिकीर्तयेत्।
नाशुभं प्राप्नुयात्किञ्चित्सोऽमुत्रेह च मानवः॥ १२२॥

जो मनुष्य इस विष्णुसहस्रनामका सदा श्रवण करता है और जो प्रतिदिन इसका कीर्तन या पाठ करता है, उसका इस लोकमें तथा परलोकमें कहीं भी कुछ अशुभ नहीं होता॥ १२२॥

वेदान्तगो ब्राह्मणः स्याात्क्षत्रियो विजयी भवेत्।
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रः सुखमवाप्नुयात्॥ १२३॥

इस विष्णुसहस्त्रनामका पाठ करनेसे अथवा कीर्तन करनेसे ब्राह्मण वेदान्त-पारगामी हो जाता है यानी उपनिषदोंके अर्थरूप परब्रह्मको पा लेता है। क्षत्रिय युद्धमें विजय पाता है, वैश्य व्यापारमें धन पाता है और शूद्र सुख पाता है॥ १२३ ॥

धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात्।
कामानवाप्नुयात्कामी प्रजार्थी प्राप्नुयात्प्रजाम्। १२४ ।

धर्मकी इच्छावाला धर्मको पाता है, अर्थकी इच्छावाला अर्थ पाता है, भोगोंकी इच्छावाला भोग पाता है और प्रजाकी इच्छावाला प्रजा पाता है॥ १२४ ॥

भक्तिमान्यः सदोत्थाय शुचिस्तद्गतमानसः।
सहस्त्रं वासुदेवस्य नाम्नामेतत्प्रकीर्तयेत्। १२५ ।
यशः प्राप्नोति विपुलं ज्ञातिप्राधान्यमेव च।
अचलां श्रियमाप्नोति श्रेयः प्राप्नोत्यनुत्तमम्। १२६ ।
न भयं क्वचिदाप्नोति वीर्यं तेजश्च विन्दति।
भवत्यरोगो द्युतिमान्बलरूपगुणान्वितः। १२७ ।

जो भक्तिमान् पुरुष सदा प्रातःकालमें उठकर स्नान करके पवित्र हो मनमें विष्णुका ध्यान करता हुआ इस वासुदेव-सहस्त्रनामका भली प्रकार पाठ

करता है, वह महान् यश पाता है, जातिमें महत्त्व पाता है, अचल सम्पत्ति पाता है और अति उत्तम कल्याण पाता है तथा उसको कहीं भय नहीं होता। वह वीर्य और तेजको पाता है तथा आरोग्यवान्, कान्तिमान्, बलवान्, रूपवान् और सर्वगुणसम्पन्न हो जाता है॥ १२५—१२७॥

रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्।
भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः। १२८।

रोगातुर पुरुष रोगसे छूट जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ पुरुष बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत भयसे छूट जाता है और आपत्तिमें पड़ा हुआ आपत्तिसे छूट जाता है॥ १२८॥

दुर्गाण्यतितरत्याशु पुरुषः पुरुषोत्तमम्।
स्तुवन्नामसहस्त्रेण नित्यं भक्तिसमन्वितः। १२९।

जो पुरुष भक्तिसम्पन्न होकर इस विष्णुसहस्त्रनामसे पुरुषोत्तमभगवान्‌की प्रतिदिन स्तुति करता है, वह शीघ्र ही समस्त संकटोंसे पार हो जाता है॥ १२९॥

वासुदेवाश्रयो मर्त्यो वासुदेवपरायणः।
सर्वपापविशुद्धात्मा याति ब्रह्म सनातनम्। १३०।

जो मनुष्य वासुदेवके आश्रित और उनके परायण है, वह समस्त पापोंसे छूटकर विशुद्ध अन्त:करणवाला हो सनातन परब्रह्मको पाता है॥ १३०॥

न वासुदेवभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित्।
जन्ममृत्युजराव्याधिभयं नैवोपजायते। १३१।

वासुदेवके भक्तोंका कहीं भी अशुभ नहीं होता है तथा उनको जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिका भी भय नहीं रहता है॥ १३१॥

इमं स्तवमधीयानः श्रद्धाभक्तिसमन्वितः।
युज्येतात्मसुखक्षान्तिश्रीधृतिस्मृतिकीर्तिभिः। १३२।

जो पुरुष श्रद्धापूर्वक भक्तिभावसे इस विष्णु-सहस्रनामका पाठ करता है, वह आत्मसुख, क्षमा, लक्ष्मी, धैर्य, स्मृति और कीर्तिको पाता है॥ १३२॥

न क्रोधो न च मात्सर्यं न लोभो नाशुभा मतिः।
भवन्ति कृतपुण्यानां भक्तानां पुरुषोत्तमे। १३३।

पुरुषोत्तमके पुण्यात्मा भक्तोंको किसी दिन क्रोध नहीं आता, ईर्ष्या उत्पन्न नहीं होती, लोभ नहीं होता और उनकी बुद्धि कभी अशुद्ध नहीं होती॥ १३३॥

द्यौः सचन्द्रार्कनक्षत्रा खं दिशो भूर्महोदधिः।
वासुदेवस्य वीर्येण विधृतानि महात्मनः। १३४।

स्वर्ग, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्रसहित आकाश, दस दिशाएँ, पृथ्वी और महासागर—ये सब महात्मा वासुदेवके वीर्यसे धारण किये गये हैं॥ १३४॥

ससुरासुरगन्धर्वं सयक्षोरगराक्षसम्।
जगद्वशे वर्ततेदं कृष्णस्य सचराचरम्।१३५।

देवता, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, सर्प और राक्षससहित यह स्थावर-जंगमरूप सम्पूर्ण जगत् श्रीकृष्णके अधीन रहकर यथायोग्य बरत रहे हैं॥ १३५॥

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिः सत्त्वं तेजो बलं धृतिः।
वासुदेवात्मकान्याहुः क्षेत्रं क्षेत्रज्ञ एव च।१३६।

इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, सत्त्व, तेज, बल, धीरज, क्षेत्र (शरीर) और क्षेत्रज्ञ (आत्मा)—ये सब श्रीवासुदेवके रूप हैं—ऐसा वेद कहते हैं॥ १३६॥

सर्वागमानामाचारः प्रथमं परिकल्पते।
आचारप्रभवो धर्मो धर्मस्य प्रभुरच्युतः।१३७।

सब शास्त्रोंमें आचार प्रथम माना जाता है, आचारसे ही धर्मकी उत्पत्ति होती है और धर्मके स्वामी भगवान् अच्युत हैं॥ १३७॥

ऋषयः पितरो देवा महाभूतानि धातवः।
जङ्गमाजङ्गमं चेदं जगन्नारायणोद्भवम्। १३८।

ऋषि, पितर, देवता, पंचमहाभूत, धातुएँ और स्थावर-जंगमात्मक सम्पूर्ण जगत्—ये सब नारायणसे ही उत्पन्न हुए हैं॥ १३८॥

योगो ज्ञानं तथा सांख्यं विद्याः शिल्पादि कर्म च।
वेदाः शास्त्राणि विज्ञानमेतत्सर्वं जनार्दनात्। १३९।

योग, ज्ञान, सांख्य, विद्याएँ, शिल्प आदि कर्म, वेद, शास्त्र और विज्ञान—ये सब विष्णुसे उत्पन्न हुए हैं॥ १३९॥

एको विष्णुर्महद्भूतं पृथग्भूतान्यनेकशः।
त्रीँल्लोकान्व्याप्य भूतात्मा भुङ्क्ते विश्वभुगव्ययः। १४०।

वे समस्त विश्वके भोक्ता और अविनाशी विष्णु ही एक ऐसे हैं, जो अनेक रूपोंमें विभक्त होकर भिन्न-भिन्न भूतविशेषोंके अनेकों रूपोंको धारण कर रहे हैं तथा त्रिलोकीमें व्याप्त होकर सबको भोग रहे हैं॥ १४०॥

इमं स्तवं भगवतो विष्णोर्व्यासेन कीर्तितम्।
पठेद्य इच्छेत्पुरुषः श्रेयः प्राप्तुं सुखानि च। १४१।

जो पुरुष परम श्रेय और सुख पाना चाहता हो वह भगवान् व्यासजीके कहे हुए इस विष्णुसहस्रनाम-स्तोत्रका पाठ करे॥ १४१॥

विश्वेश्वरमजं देवं जगतः प्रभवाप्ययम्।
भजन्ति ये पुष्कराक्षं न ते यान्ति पराभवम्। १४२।

जो विश्वके ईश्वर जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश करनेवाले जन्मरहित कमललोचन भगवान् विष्णुका भजन करते हैं, वे कभी पराभव नहीं पाते हैं॥ १४२॥

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यामनुशासनिके पर्वणि भीष्मयुधिष्ठिरसंवादे श्रीविष्णोर्दिव्यसहस्रनामस्तोत्रम्॥

हरिः ॐ तत्सत्! हरिः ॐ तत्सत्!! हरिः ॐ तत्सत्!!!

श्रीविष्णुस्तोत्राणि

१—श्रीदशावतारस्तोत्रम्

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदम्।
विहितवहित्रचरित्रमखेदम् ॥
केशव धृतमीनशरीर जय जगदीश हरे॥ १ ॥

हे मीनावतारधारी केशव! हे जगदीश्वर! हे हरे! प्रलयकालमें बढ़े हुए समुद्रजलमें बिना क्लेश नौका चलानेकी लीला करते हुए आपने वेदोंकी रक्षा की थी, आपकी जय हो॥ १ ॥

क्षितिरतिविपुलतरे तव तिष्ठति पृष्ठे।
धरणिधरणकिणचक्रगरिष्ठे ॥
केशव धृतकच्छपरूप जय जगदीश हरे॥ २ ॥

हे केशव! पृथ्वीके धारण करनेके चिह्नसे कठोर और अत्यन्त विशाल तुम्हारी पीठपर पृथ्वी स्थित है, ऐसे कच्छपरूपधारी जगत्पति आप हरिकी जय हो॥ २ ॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना।
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना॥
केशव धृतसूकररूप जय जगदीश हरे॥ ३॥

चन्द्रमामें निमग्न हुई कलंकरेखाके समान यह पृथ्वी आपके दाँतकी नोकपर अटकी हुई सुशोभित हो रही है, ऐसे सूकररूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो॥ ३॥

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गम्।
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम्॥
केशव धृतनरहरिरूप जय जगदीश हरे॥ ४॥

हिरण्यकशिपुरूपी तुच्छ भृंगको चीर डालनेवाले विचित्र नुकीले नख आपके करकमलमें हैं, ऐसे नृसिंहरूपधारी जगत्पति हरि केशवकी जय हो॥ ४॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन।
पदनखनीरजनितजनपावन॥
केशव धृतवामनरूप जय जगदीश हरे॥ ५॥

हे आश्चर्यमय वामनरूपधारी केशव! आपने पैर बढ़ाकर राजा बलिको छला तथा अपने चरण-

नखोंके जलसे लोगोंको पवित्र किया, ऐसे आप जगत्पति हरिकी जय हो॥ ५॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापम्।
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम्॥
केशव धृतभृगुपतिरूप जय जगदीश हरे॥ ६॥

हे केशव! आप जगत्के ताप और पापोंका नाश करते हुए उसे क्षत्रियोंके रुधिररूप जलसे स्नान कराते हैं, ऐसे आप परशुरामरूपधारी जगत्पति हरिकी जय हो॥ ६॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयम्।
दशमुखमौलिबलिं रमणीयम्॥
केशव धृतरघुपतिवेष जय जगदीश हरे॥ ७॥

जो युद्धमें सब दिशाओंमें लोकपालोंको प्रसन्न करनेवाली, रावणके सिरकी सुन्दर बलि देते हैं, ऐसे श्रीरामावतारधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ७॥

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभम्।
हलहतिभीतिमिलितयमुनाभम्॥

केशव धृतहलधररूप जय जगदीश हरे॥ ८॥

जो अपने गौर शरीरमें हलके भयसे आकर मिली हुई यमुना और मेघके सदृश नीलाम्बर धारण किये रहते हैं, ऐसे आप बलरामरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ८॥

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातम्।
सदयहृदयदर्शितपशुघातम्॥
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे॥ ९॥

सदय हृदयसे पशुहत्याकी कठोरता दिखाते हुए यज्ञविधानसम्बन्धी श्रुतियोंकी निन्दा करनेवाले आप बुद्धरूपधारी जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ ९॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालम्।
धूमकेतुमिव किमपि करालम्॥
केशव धृतकल्किशरीर जय जगदीश हरे॥ १०॥

जो म्लेच्छसमूहका नाश करनेके लिये धूमकेतुके समान अत्यन्त भयंकर तलवार चलाते हैं, ऐसे कल्किरूपधारी आप जगत्पति भगवान् केशवकी जय हो॥ १०॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारम् ।
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम्॥
केशव धृतदशविधरूप जय जगदीश हरे॥ ११ ॥

[हे भक्तो!] इस जयदेव कविकी कही हुई मनोहर, आनन्ददायक, कल्याणमय तत्त्वरूप स्तुतिको सुनो, हे दशावतारधारी! जगत्पति, हरि केशव! आपकी जय हो॥ ११ ॥

इति श्रीजयदेवविरचितं श्रीदशावतारस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

२—श्रीकमलापत्यष्टकम्

भुजगतल्पगतं घनसुन्दरं गरुडवाहनमम्बुजलोचनम्।
नलिनचक्रगदाकरमव्ययं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ १ ॥

रे मनुष्यो! जो शेषशय्यापर पौढ़े हुए हैं, नीलमेघ-सदृश श्यामसुन्दर हैं, गरुड़ जिनका वाहन है और जिनके कमल-जैसे नेत्र हैं, उन शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी अव्यय श्रीकमलापतिको भजो॥ १ ॥

अलिकुलाभिनकोमलकुन्तलं विमलपीतदुकूलमनोहरम्।
जलधिजाङ्कितवामकलेवरं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ २॥

भौंरोंके समान जिनकी काली-काली कोमल अलकें हैं, अति निर्मल सुन्दर पीताम्बर है और जिनके वामांकमें श्रीलक्ष्मीजी सुशोभित हैं, रे मनुष्यो! उन श्रीकमलापतिको भजो॥ २॥

किमु जपैश्च तपोभिरुताध्वरैरपि किमुत्तमतीर्थनिषेवणैः।
किमुत शास्त्रकदम्बविलोकनैर्भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ३॥

जप, तप, यज्ञ अथवा उत्तम-उत्तम तीर्थोंके सेवनमें क्या रखा है? अथवा अधिक शास्त्रावलोकनके पचड़ेमें पड़नेसे ही क्या होना है? रे मनुष्यो! बस श्रीकमलापतिको ही भजो॥ ३॥

मनुजदेहमिमं भुवि दुर्लभं समधिगम्य सुरैरपि वाञ्छितम्।
विषयलम्पटतामपहाय वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ४॥

इस संसारमें यह मनुष्य-शरीर अति दुर्लभ और देवगणोंसे भी वांछित है—ऐसा जानकर विषय-लम्पटताको त्याग कर रे मनुष्यो! श्रीकमलापतिको भजो॥ ४॥

न वनिता न सुतो न सहोदरो न हि पिता जननी न च बान्धवः।
व्रजति साकमनेन जनेन वै भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ५॥

इस जीवके साथ स्त्री, पुत्र, भाई, पिता, माता और बन्धुजन कोई भी नहीं जाता, अतः रे मनुष्यो! श्रीकमलापतिको भजो॥ ५॥

सकलमेव चलं सचराचरं जगदिदं सुतरां धनयौवनम्।
समवलोक्य विवेकदृशा द्रुतं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ६॥

यह सचराचर जगत् धन और यौवन सभी अत्यन्त अस्थिर हैं—ऐसा विवेकदृष्टिसे देखकर रे मनुष्यो! शीघ्र ही श्रीकमलापतिको भजो॥ ६॥

विविधरोगयुतं क्षणभङ्गुरं परवशं नवमार्गमलाकुलम्।
परिनिरीक्ष्य शरीरमिदं स्वकं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ७॥

यह शरीर नाना प्रकारके रोगोंका आश्रय, क्षणिक, परवश तथा मलसे भरे हुए नौ मार्गोंवाला है—ऐसा देखकर रे मनुष्यो! श्रीकमलापतिको भजो॥ ७॥

मुनिवरैरनिशं हृदि भावितं शिवविरिञ्चिमहेन्द्रनुतं सदा।
मरणजन्मजराभयमोचनं भजत रे मनुजाः कमलापतिम्॥ ८॥

मुनिजन जिनका अहर्निश हृदयमें ध्यान करते हैं, शिव, ब्रह्मा तथा इन्द्रादि समस्त देवगण जिनकी सर्वदा वन्दना करते हैं तथा जो जरा, जन्म और मरणादिके भयको दूर करनेवाले हैं, रे मनुष्यो! उन श्रीकमलापतिको भजो॥ ८॥

हरिपदाष्टकमेतदनुत्तमं परमहंसजनेन समीरितम्।
पठति यस्तु समाहितचेतसा व्रजति विष्णुपदं स नरो ध्रुवम्॥ ९॥

दास परमहंसद्वारा कहे गये इस अत्युत्तम भगवान् हरिके अष्टकको जो मनुष्य समाहितचित्तसे पढ़ता है, वह अवश्य ही भगवान् विष्णुके परमधामको प्राप्त होता है॥ ९॥

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं
श्रीकमलापत्यष्टकं सम्पूर्णम्।

३—मङ्गलगीतम्

श्रितकमलाकुचमण्डल धृतकुण्डल ए।
कलितललितवनमाल जय जय देव हरे॥ १॥

लक्ष्मीजीके वक्षःस्थलका आश्रय करनेवाले, कुण्डलधारी और अति मनोहर वनमालाधारी हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ १॥

दिनमणिमण्डलमण्डन भवखण्डन ए।
मुनिजनमानसहंस जय जय देव हरे॥ २॥

सूर्यमण्डलको सुशोभित करनेवाले, भवभयके नाशक और मुनियोंके मनरूप सरोवरके हंस हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ २॥

कालियविषधरगञ्जन जनरञ्जन ए।
यदुकुलनलिनदिनेश जय जय देव हरे॥ ३॥

कालियनागका दमन करनेवाले, भक्तोंको आनन्दित करनेवाले एवं यदुकुलकमलदिवाकर हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ३॥

मधुमुरनरकविनाशन गरुडासन ए।
सुरकुलकेलिनिदान जय जय देव हरे॥ ४॥

मधु, मुर और नरकासुरके संहारकर्ता, गरुडवाहन, देवताओंकी क्रीडाके आश्रय हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ४॥

अमलकमलदललोचन भवमोचन ए।
त्रिभुवनभवननिधान जय जय देव हरे॥ ५॥

निर्मल कमलदलके समान नेत्रोंवाले, भवबन्धनको काटनेवाले एवं त्रिभुवनके आश्रयभूत हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ५॥

जनकसुताकृतभूषण जितदूषण ए।
समरशमितदशकण्ठ जय जय देव हरे॥ ६॥

सीताके साथ शोभा पानेवाले, दूषण दैत्यको जीतनेवाले और युद्धमें रावणको मारनेवाले हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ६॥

अभिनवजलधरसुन्दर धृतमन्दर ए।
श्रीमुखचन्द्रचकोर जय जय देव हरे॥ ७॥

नवीन मेघके समान श्यामसुन्दर, मन्दराचलको धारण करनेवाले और लक्ष्मीजीके मुखचन्द्रके लिये चकोररूप हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ७॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव हरे॥ ८॥

आपके चरणोंकी हम शरण लेते हैं, आप भी इधर दयादृष्टि कीजिये और हम शरणागतोंका कल्याण कीजिये। हे देव! हे हरे! आपकी जय हो,जय हो॥ ८॥

श्रीजयदेवकवेरुदितमिदं कुरुते मुदम्।
मङ्गलमञ्जुलगीतं जय जय देव हरे॥ ९॥

इस प्रकार श्रीजयदेव कविका बनाया हुआ यह मंगलमय मधुर गीत भक्तोंको आनन्द देनेवाला है। हे देव! हे हरे! आपकी जय हो, जय हो॥ ९॥

इति श्रीजयदेवविरचितं मङ्गलगीतं सम्पूर्णम्।

४—श्रीदीनबन्ध्वष्टकम्

यस्मादिदं जगदुदेति चतुर्मुखाद्यं
यस्मिन्नवस्थितमशेषमशेषमूले ।
यत्रोपयाति विलयं च समस्तमन्ते
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ॥ १ ॥

जिन परमात्मासे यह ब्रह्मा आदिरूप जगत् प्रकट होता है और सम्पूर्ण जगत्के कारणभूत जिस परमेश्वरमें यह समस्त संसार स्थित है तथा अन्तकालमें यह समस्त जगत् जिनमें लीन हो जाता है—वे दीनबन्धु-भगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें ॥ १ ॥

चक्रं सहस्रकरचारु करारविन्दे
गुर्वी गदा दरवरश्च विभाति यस्य ।
पक्षीन्द्रपृष्ठपरिरोपितपादपद्मो
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः ॥ २ ॥

जिनके करकमलमें सूर्यके समान प्रकाशमान चक्र, भारी गदा और श्रेष्ठ शंख शोभित हो रहा है, जो पक्षिराज (गरुड़)-की पीठपर अपने चरणकमल

रखे हुए हैं, वे दीनबन्धुभगवान् आज मुझे प्रत्यक्ष दर्शन दें॥ २॥

येनोद्धृता वसुमती सलिले निमग्ना
नग्ना च पाण्डववधूः स्थगिता दुकूलैः।
संमोचितो जलचरस्य मुखाद्गजेन्द्रो
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥ ३॥

जिन्होंने जलमें डूबी हुई पृथ्वीका उद्धार किया, नग्न की जाती हुई पाण्डववधू (द्रौपदी)-को वस्त्रोंसे ढक लिया और ग्राहके मुखसे गजराजको बचा लिया—वे दीनबन्धुभगवान् आज मेरे नेत्रोंके समक्ष हो जायँ॥ ३॥

यस्यार्द्रदृष्टिवशतस्तु सुराः समृद्धिं
कोपेक्षणेन दनुजा विलयं व्रजन्ति।
भीताश्चरन्ति च यतोऽर्कयमानिलाद्या
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥ ४॥

जिनकी स्नेहदृष्टिसे देखे जानेके कारण देवतालोग ऐश्वर्य पाते हैं और कोपदृष्टिके द्वारा देखे जानेसे

दानवलोग नष्ट हो जाते हैं तथा सूर्य, यम और वायु आदि जिनके भयसे भीत होकर अपने-अपने कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं, वे दीनबन्धुभगवान् आज मेरे नेत्रोंके सामने हो जायँ॥ ४॥

गायन्ति सामकुशला यमजं मखेषु
ध्यायन्ति धीरमतयो यतयो विविक्ते।
पश्यन्ति योगिपुरुषाः पुरुषं शरीरे
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥ ५॥

सामवेदके गानमें चतुरलोग यज्ञोंमें जिन अजन्मा भगवान्‌के गुणोंको गाते हैं, धीर बुद्धिवाले संन्यासीलोग एकान्तमें जिनका ध्यान करते हैं और योगीजन अपने शरीरके भीतर पुरुषरूपसे जिनका साक्षात्कार करते हैं, वे दीनबन्धुभगवान् आज मेरे नेत्रोंके सामने हों॥ ५॥

आकाररूपगुणयोगविवर्जितोऽपि
भक्तानुकम्पननिमित्तगृहीतमूर्तिः ।
यः सर्वगोऽपि कृतशेषशरीरशय्यो
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥ ६॥

जो भगवान् आकार, रूप और गुणके सम्बन्धसे रहित होकर भी भक्तोंके ऊपर दया करनेके निमित्त अवतार धारण करते हैं और जो सर्वत्र विद्यमान रहते हुए भी शेषनागके शरीरको अपनी शय्या बनाये हुए हैं, वे दीनबन्धुभगवान् आज मेरे नेत्रोंके प्रत्यक्ष हों॥ ६॥

यस्याङ्घ्रिपङ्कजमनिद्रमुनीन्द्रवृन्दै-
राराध्यते भवदवानलदाहशान्त्यै।
सर्वापराधमविचिन्त्य ममाखिलात्मा
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥ ७॥

आलस्यहीन मुनिवरोंका समूह संसारके दुःखरूपी दावानलकी जलन शान्त करनेके लिये जिन भगवान्के चरणकमलकी आराधना करता है, वे समस्त जगत्के आत्मभूत दीनबन्धुभगवान् मेरे सब अपराधोंको भूलकर आज मेरे नेत्रोंके समक्ष दर्शन दें॥ ७॥

यन्नामकीर्तनपरः श्वपचोऽपि नूनं
हित्वाखिलं कलिमलं भुवनं पुनाति।
दग्ध्वा ममाघमखिलं करुणेक्षणेन
दृग्गोचरो भवतु मेऽद्य स दीनबन्धुः॥ ८॥

जिन भगवान्के नामकीर्तनमें तत्पर चाण्डाल भी निश्चय ही सम्पूर्ण कलिमल (पाप)-को त्यागकर जगत्को पवित्र कर देता है, वे दीनबन्धुभगवान् मेरे समस्त पापको अपनी करुणादृष्टिसे जलाकर आज मेरे नेत्रोंको प्रत्यक्ष दर्शन दें॥ ८॥

दीनबन्ध्वष्टकं पुण्यं ब्रह्मानन्देन भाषितम्।
यः पठेत् प्रयतो नित्यं तस्य विष्णुः प्रसीदति॥ ९॥

जो लोग ब्रह्मानन्दके कहे हुए इस दीनबन्ध्वष्टक नामक पवित्र स्तोत्रका नित्य संयतचित्तसे पाठ करेंगे उनके ऊपर विष्णुभगवान् प्रसन्न रहेंगे॥ ९॥

इति श्रीमत्परमहंसस्वामिब्रह्मानन्दविरचितं
श्रीदीनबन्ध्वष्टकं सम्पूर्णम्।